शमशेर सिंह

बनाम

पंजाब राज्य

(Shamsher Singh

Vs.

State of Punjab)

श्रौर

ईश्वर चन्द्र अग्रवाल

बनाम

पंजाब राज्य

(Ishwar Chander Agarwal

Vs.

State of Punjab)

(23 अगस्त, 1974)

(मु० न्या० ए० एन० रे०, न्या० डी० जी० पालेकर, के० के० मैथ्यू, वाई० वी० चन्द्रचूड़, ए० अलगिरिस्वामी, पी० एन० भगवती, श्रौर वी० आर० कृष्णअय्यर)

पंजाब सिविल सर्विसेज (पनिश्मेन्ट एण्ड अपील) रूल्स, 1952 नियम 9 (i)—(1) परिवीक्षाधीन व्यक्ति की पुष्टि—परिवीक्षाधीन व्यक्ति की पुष्टि तब तक नहीं होती जब तक कि पुष्टि का आदेश न कर दिया गया हो ।

(ii)—सेवोन्मोचन का आदेश—परिवीक्षाधीन व्यक्ति की उपयुक्तता का पता लगाया जाना चाहिए—मामले के तथ्यों के आधार पर ऐसा न किए जाने से सेवोन्मोचन का आदेश नियम 9 का व्यतिक्रमण करने के कारण अपास्त किया जाएगा ।

पंजाब सिविल सर्विसेज (जुडिशियल ब्रांच) रूल्स, 1951—भाग डी—नियम 7 (1) श्रौर 7 (3) के अर्थ श्रौर प्रवर्तन को देखते हुए विवक्षित तौर पर किसी भी पुष्टि का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता ।

भारत का संविधान—अनुच्छेद 234—अधीनस्थ न्यायाधीशों को नियुक्त करने और उनको सेवा से हटाने की शक्ति का प्रयोग—शक्ति का इस प्रकार प्रयोग राज्यपाल का व्यक्तिगत कृत्य नहीं है किन्तु कार्यपालिक कृत्य है जिसका संविधान के अधीन इस निमित्त बनाए नियमों के अनुसार प्रयोग किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 235—अधीनस्थ न्यायाधीशों पर उच्च न्यायालय का नियन्त्रण—उच्च न्यायालय द्वारा सरकार से यह कहना कि वह सतर्कता निदेशक द्वारा जांच कराए, अपनी सत्ता का त्याग करना है—उच्च न्यायालय का यह कार्य अनुच्छेद 235 की अवहेलना करना माना जायगा।

अनुच्छेद 311—जांच-अधिकारी द्वारा लेखबद्ध किए गये कथन और जांच रिपोर्ट अपीलार्थी को न दिया जाना—जांच रिपोर्ट के आधार पर सेवा समाप्त किया जाना—सेवा समाप्त करने का आदेश दण्ड स्वरूप माना जाएगा और अनुच्छेद 311 का उल्लंघन करने के कारण अवैध होगा और अपास्त किया जाएगा।

अनुच्छेद 53 और 154—कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग—राष्ट्रपति और राज्यपाल क्रमशः अनुच्छेद 74 (1) और 163 (1) के अनुसार मंत्रिपरिषद् की सलाह और मंत्रणा के अनुसार ही कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं—संविधान द्वारा उनसे यह अपेक्षा नहीं की गई है कि वे मंत्रिपरिषद की सलाह और मंत्रणा के बिना या सलाह और मंत्रणा के प्रतिकूल कार्य करे।

अनुच्छेद 77 (3) और 166 (3)—काम-काज के नियमों के अधीन बंटवारा किए गए कार्य की बाबत मन्त्री या अधिकारी का विनिश्चय राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय है—इन अनुच्छेदों में प्रत्यायोजन का कोई उपबंध नहीं है।

प्रशासनिक विधि—शक्ति का प्रत्यायोजन—काम-काज के नियमों के अधीन राज्यपाल द्वारा मन्त्रियों को कार्य का बंटवारा अपनी शक्ति का प्रत्यायोजन नहीं है—ऐसा कार्य मंत्रि-परिषद् की मन्त्रणा पर मन्त्री या अधिकारी की मार्फत राज्यपाल द्वारा कार्यपालिक शक्ति का प्रयोग है।

अपीलार्थियों ने पंजाब सिविल सेवा (न्यायायिक शाखा) में सेवा प्रारम्भ की। अपीलार्थी शमशेर सिंह की नियुक्ति अधीनस्थ न्यायाधीश के रूप में

1-5-1969 को हुई थी। वह परिवीक्षा पर था। 22-3-1967 को मुख्य सचिव ने 15-12-1966 को रजिस्ट्रार द्वारा संसूचित किए गए कुछ आरोपों को दोहराते हुए उसके नाम एक सूचना जारी की और अपीलार्थी से इस बात का हेतुक दर्शित करने के लिए कहा कि उसकी सेवाएं क्यों न समाप्त कर दी जाएं क्योंकि वह अपने काम के लिए अनुपयुक्त पाया गया है। अपीलार्थी ने उत्तर दिया किन्तु 29-4-1967 को अपीलार्थी की सेवाएं समाप्त कर दी गईं। अपीलार्थी ईश्वर चन्द्र अग्रवाल की सेवाएं तारीख 15-12-1969 के आदेश से समाप्त कर दी गई थीं। उस समय वह भी परिवीक्षाधीन था। दोनों अपीलार्थियों ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील की। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—(1) हमारे संविधान में यथा समाविष्ट शासन की कैबिनेट प्रणाली के अधीन, राज्यपाल राज्य का सांविधानिक या प्ररूपिक प्रधान है और उन क्षेत्रों को छोड़कर जिनमें राज्यपाल से संविधान द्वारा या संविधान के अधीन यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों का प्रयोग स्वविवेक से करे, वह संविधान के अधीन या संविधान द्वारा उसे प्रदत्त सब शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और मन्त्रणा पर करता है। (पैरा 28)

राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों की नियुक्ति या उनकी पदच्युति या पद से हटाया जाना राज्यपाल का व्यक्तिगत कृत्य नहीं है बल्कि संविधान के अधीन उस निमित्त बनाए गए नियमों के अनुसार किया गया राज्यपाल का कार्यपालिक कृत्य है। (पैरा 57)

अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीश उच्च-न्यायालय के न केवल नियन्त्रण के अधीन काम करते हैं, बल्कि उन पर उच्च न्यायालय की निगरानी तथा अधिकार भी होता है। उच्च न्यायालय ने अपना नियन्त्रण बनाए रखने का कर्त्तव्य पूरा नहीं किया है। उच्च न्यायालय द्वारा सतर्कता निदेशक के माध्यम से जांच कराने के लिए कहा जाना अपनी सत्ता के त्याग का कार्य था। अनुच्छेद 235 का मुख्य आधार यह है कि राज्यपाल उच्च न्यायालय की सिफारिश पर कार्य करेगा। उच्च न्यायालय को चाहिए था कि वह इस मामले की जांच जिला न्यायाधीशों की मार्फत कराता। अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीश न केवल अनुशासन के लिए बल्कि अपने गौरव के लिए भी उच्च न्यायालय का सहारा ढूंढते हैं। उच्च न्यायालय ने सरकार से यह कहकर कि वह सर्तकता निदेशक की मार्फत जांच कराए, अनुच्छेद 235 की पूरी तरह से अवहेलना की है। (पैरा 78)

इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए सेवा को समाप्त करने वाला सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त किया गया आदेश भी यह प्रमाणित कर सकता है कि कलंकास्पद अवचार के गम्भीर प्रकार के अभिकथनों की जांच अनुच्छेद 311 के उपबंधों का व्यतिक्रम करते हुए की गई है। ऐसे मामलों में आदेश के प्ररूप की सरलता का कोई भी महत्त्व नहीं होगा। यही बात ईश्वर चन्द्र अग्रवाल के मामले में हुई है। सेवा समापन का आदेश अवैध है और अपास्त किया जाना चाहिए। (पैरा 80)

राष्ट्रपति तथा राज्यपाल कार्यपालिक कर्त्तव्यों में मंत्रि-परिषद् की सहायता और मन्त्रणा पर कार्य करते हैं और संविधान के द्वारा उनसे यह अपेक्षा नहीं की गई है कि वे मन्त्रि-परिषद् की सहायता और मन्त्रणा के बिना तथा मंत्रि-परिषद् की सहायता और मंत्रणा के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से कार्य करें। जहां राज्यपाल को विवेकाधिकार दिया गया है, वहां राज्यपाल स्वयं अपने निर्णय के अनुसार कार्य करता है। राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् के साथ सामंजस्य रखते हुए करता है। अधीनस्थ न्यायिक सेवा के सदस्यों की नियुक्ति तथा उनको पद से हटाया जाना राज्यपाल का कार्यकालिक कार्य है, जो संविधान के उपबंधों के अनुसार मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर किया जाना है। व्यक्तियों की नियुक्तियां करने और उनको पद से हटाने का कार्य मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर कार्यपालिका के सांविधानिक प्रधान के रूप में राष्ट्रपति तथा राज्यपाल द्वारा किया जाता है। (पैरा 88)

अनुच्छेद 74(1) में राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का संपादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् का उपबंध किया गया है। अनुच्छेद 163(1) में राज्यपाल को सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् का ऐसा ही उपबंध किया गया है। इसलिए राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त कृत्य चाहे संघ के कृत्य हों या राष्ट्रपति के कृत्य, उनका प्रयोग हर हालत में मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा से ही किया जाना है और यही बात, उन कृत्यों को छोड़ कर जिनमें राज्यपाल को स्वविवेक का प्रयोग करना होता है, राज्यपाल के कृत्यों के संबंध में भी सही है। (पैरा 44)

राज्यपाल को मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा के विरुद्ध कार्य करने की इजाजत देकर राज्य के अन्दर एक समानान्तर शासन के लिए उपबंध करना संविधान का उद्देश्य नहीं है। (पैरा 55)

कामकाज के नियमों के अधीन किसी मंत्री या अधिकारी का विनिश्चय क्रमशः राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय है। राज्यपाल से ऐसा राज्यपाल अभिप्रेत

है, जिसको मंत्रियों द्वारा सहायता तथा मंत्रणा दी जाती हो। न तो अनुच्छेद 77(3) और न अनुच्छेद 166(3) में शक्ति के प्रत्यायोजन के लिए उपबंध किया गया है। यद्यपि राज्य की कार्यपालिका शक्ति वस्तुत: राज्यपाल में निहित है, किन्तु वास्तव में उसका प्रयोग अनुच्छेद 166(3) के अधीन बनाए गए कामकाज के नियमों के अधीन मंत्रियों द्वारा किया जाता है। सरकार के कार्य का बंटवारा मंत्रियों की सहायता और मन्त्रणा पर किया गया राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय है। (पैरा 40)

राष्ट्रपति एवं राज्यपाल सांविधानिक या प्ररूपिक प्रधान हैं। उन क्षेत्रों को छोड़ कर जिनमें संविधान के द्वारा या संविधान के अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों का प्रयोग स्वविवेक से करे, राष्ट्रपति एवं राज्यपाल संविधान द्वारा या संविधान के अधीन स्वयं को प्रदत्त शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर करते हैं। जहां भी किसी शक्ति या कृत्य के राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा प्रयोग के लिए संविधान में राष्ट्रपति या राज्यपाल के समाधान की अपेक्षा की गई है, वहां संविधान द्वारा अपेक्षित समाधान राष्ट्रपति या राज्यपाल का व्यक्तिगत समाधान नहीं है, बल्कि कैबिनेट शासन प्रणाली में सांविधानिक अर्थ में राष्ट्रपति या राज्यपाल का समाधान अर्थात् उसकी मंत्रिपरिषद् का समाधान है जिसकी सहायता और मंत्रणा पर राष्ट्रपति या राज्यपाल सामान्यत: अपनी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करते हैं। अनुच्छेद 77(3) और 166(3), में से किसी के अधीन बनाए गए कामकाज के नियमों के अधीन किसी भी मंत्री या अधिकारी का विनिश्चय क्रमश: राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय होता है। इन अनुच्छेदों में किसी भी प्रत्यायोजन के लिए उपबंध नहीं किया गया है। इसलिए कामकाज के नियमों के अधीन मंत्री या अधिकारी का विनिश्चय राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय है। (पैरा 48)

जहां किसी मंत्री को सौंपे गए कृत्यों का पालन उसके विभाग में नियोजित किसी अधिकारी द्वारा किया जाता है, वहां विधि की दृष्टि में कोई भी प्रत्यायोजत नहीं है क्योंकि संविधान की दृष्टि से अधिकारी का कार्य या विनिश्चय मंत्रियों का ही कार्य या विनिश्चय होता है। अधिकारी तो किसी भी मंत्री को प्रदत्त किए गए कृत्यों के निर्वहन के लिए एक साधन मात्र है। (पैरा 31)

विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी कैबिनेट शासन प्रणाली का मर्म यह है कि वैयष्टिक मंत्री अपने मंत्रालय में किए गए या न किए गए हर कार्य के लिए जिम्मेदार होता है। प्रत्येक प्रशासन में, विनिश्चय सिविल सेवकों द्वारा किए जाते हैं। मंत्री नीति निर्धारित करते हैं। मंत्रिपरिषद् मुख्य नीतियों को तय करती है। जब कोई सिविल सेवक कोई विनिश्चय करता है तो वह यह कार्य अपने मंत्रि के

प्रत्यायुक्त (डेलीगेट) के रूप में नहीं करता है। वह सरकार की ओर से कार्य करता है अधिकारी सरकार के हाथ-पैर हैं न कि उसके प्रत्यायुक्त। जहां कृत्य किसी मंत्री के सुपुर्द किए जाते हैं और उनका संपालन मंत्रालय के विभाग में नियोजित किसी पदाधिकारी द्वारा किया जाता है, वहां विधि की दृष्टि में कोई भी प्रत्यायोजन नहीं होता है क्योंकि सांविधानिक रूप से पदधारी का कार्य या विनिश्चय मंत्री का ही कार्य या विनिश्चय होता है। (पैरा 35)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1971] (1971) सप्लीमेंट एस० सी० आर० 46 = [1971] 2 उम० नि० प० 612 :
यू० एन० राव बनाम **श्रीमती इंदिरा गांधी**
(U. N. Rao *Vs.* Shrimati Indira Gandhi); 33,142,47

[1971] (1971) सप्लीमेंट एस० सी० आर० 118 = [1971] 2 उम० नि० प० 650 :
के० एच० फडनीस बनाम **महाराष्ट्र राज्य**
(K. H. Phadnis *Vs.* State of Maharashtra); 66

[1971] (1971) 2 एस० सी० आर० 191 :
बिहार राज्य बनाम **शिव भिक्षुक**
(State of Bihar *Vs.* Shiva Bhikshuk); 67

[1971] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 1551 :
के० एन० राजगोपाल बनाम **एम० करुणानिधि**
(K. N. Rajagopal *Vs.* M. Karunanidhi); 144

[1971] (1971) 3 एस० सी० आर० 483 = [1971] 1 उम० नि० प० 941 :
भारत संघ बनाम **ज्योति प्रकाश मित्तर**
(Union of India *Vs.* Jyoti Prakash Mittar); 156

[1970] (1970) 3 एस० सी० आर० 505, 511 :
ए० संजीवी नायडू बनाम **मद्रास राज्य**
(A. Sanjeevi Naidu *Vs.* State of Madras); 33,34,47

[1970] (1970) 3 एस० सी० आर० 530 :
आर० सी० कूपर बनाम **भारत संघ**
(R. C. Cooper *Vs.* Union of India); 141

शमशेर सिंह ब० पंजाब राज्य [मु० न्या० रे] 363

[1968] (1968) 1 एस० सी० श्रार० 455, 465 :
त्रिभुवन दास का मामला
(Tribhuvandas's Case); 125

[1967] (1967) 2 एस० सी० श्रार० 406 :
विजय लक्ष्मी काटन मिल्स लि० बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य श्रौर श्रन्य
(Bejoy Lakshmi Cotton Mills Ltd. *Vs.* State of West Bengal and Others); 39, 40

[1965] (1965) 2 एस० सी० श्रार० 53, 68 :
जे० पी० मित्तर बनाम मुख्य न्यायाधिपति, कलकत्ता
(J. P. Mitter *Vs.* Chief Justice, Calcutta); 155

[1965] (1965) 3 एस० सी० श्रार० 53 :
बृन्दावन नायक बनाम निर्वाचन श्रायोग
(Brindaban Nayak *Vs.* Election Commission); 158

[1964] (1964) 5 एस० सी० श्रार० 294 :
जयन्तीलाल श्रमृत लाल शोधन बनाम एफ० एन० राणा श्रौर श्रन्य (Jayantilal Amrit Lal Shodhan *Vs.* F. N. Rana and Others); 41

[1964] (1964) 2 एस० सी० श्रार० 135 :
श्रार० सी० बनर्जी बनाम भारत संघ
(R. C. Banerji *Vs.* Union of India); 65

[1964] (1964) 5 एस० सी० श्रार० 190 :
चम्पक लाल सी० शाह बनाम भारत संघ
(Champaklal C. Shah *Vs.* Union of India); 65

[1964] ए० श्राई० श्रार० 1964 एस० सी० 449 :
जगदीश मित्तर बनाम भारत संघ (Jagdish Mitter *Vs.* Union of India); 65

[1963] (1963)3 एस० सी० श्रार० : 716
मदन गोपाल बनाम पंजाब राज्य
(Madan Gopal *Vs.* State of Punjab); 65

[1962] 1962 की सिविल श्रपील संख्या 590 :
जिसका विनिश्चय 23-10-1963 को किया गया :
श्रार० सी० लेसी बनाम बिहार राज्य श्रौर श्रन्य
(R. C. Lacy *Vs.* State of Bihar and Others); 65

[1961] (1961) 1 एस० सी० आर० 606 :
उड़ीसा राज्य बनाम राम नारायण दास (The State of Orissa *Vs.* Ramnarain Das); 65

[1960] ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 689 :
गोपी किशोर प्रसाद बनाम भारत संघ (Gopi Kishore Prasad *Vs.* Union of India); 64

[1958] (1958) एस० सी० आर० 828 :
पुरुषोत्तम लाल ढींगरा बनाम भारत सघ (Parshottam Lal Dhingra *Vs.* Union of India); 62

[1955] 2 एस० सी० आर० 225, 236-37 :
राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य Ram Jawaya Kapur *Vs.* State of Punjab); और 33, 47

[1944-45] (1944-45) 72 आई० ए० 241 :
किंग एम्परर बनाम शिवनाथ बनर्जी और अन्य (King Emperos *Vs.* Sidnath Banerji)and others); 37

व्युत्सृत गिर्णय

[1971] (1971) 3 एस० सी० आर० 461 :
सरदारी लाल बनाम भारत संघ और अन्य (Sardari Lal *Vs.* Union of India and Others). 6

अनुमोदित निर्णय

[1964] (1947) 5 एस० सी० आर० 683:
मोती राम डेका इत्यादि बनाम जनरल मैनेजर एन० ई० एफ० रेलवे मालेगांव, पांडु (Moti Ram Deka etc. *Vs.* General Manager N. E. F. Railway, Maligaon, Pandu); और 46,49

[1943] (1943) 2 आल ई० आर० 560:
कार्लटन लिमिटेड बनाम वर्क्स कमिश्नर्स (Carltona Ltd. *Vs.* Works Commissioners); 31

अननुमोदित निर्णय

[1961] (1961) 2 एस० सी० आर० 679 :
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम बाबू राम उपाध्याय (State of Uttar Pradesh and Others. *Vs.* Babu Ram Upadhyaya).† 50

प्रभेदित निर्णय

[1968] (1968) 3 एस० सी० आर० 1 :
पंजाब राज्य बनाम **धर्म सिंह** (State of Punjab *Vs.* Dharam Singh). 70

सिविल अपीली अधिकारिता : 1970 की सिविल अपील संख्या 2289 और 1971 की सिविल अपील संख्या 632.

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति ए० एन० रे ने स्वयं अपनी तथा न्यायाधिपति डी० जी० पालेकर, के० के० मैथ्यू, वाई० वी० चन्द्रचूड़ और ए० अलगिरिस्वामी की ओर से दिया।

मुख्य न्यायाधिपति रे—

ये दो अपीलें पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं।

2. अपीलार्थियों ने पंजाब सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) में सेवा आरम्भ की। वे दोनों परिवीक्षाधीन (प्रोबेशन पर) थे।

3. अपीलार्थी शमशेर सिंह की सेवाएं तारीख 27 अप्रैल, 1967 के आदेश से समाप्त की गई थीं। वह आदेश इस प्रकार था —

> "पंजाब के राज्यपाल, पंजाब सिविल सेवा (दण्ड और अपील) नियम 1952 के नियम 9 के अधीन परिवीक्षाधीन अधीनस्थ न्यायाधीश श्री शमशेर सिंह की सेवाओं को तत्काल समाप्त करते हैं। निवेदन है कि ये आदेश सम्बद्ध अधिकारी को बता दिए जाएं और सरकार को इस बात की संसूचना भेजी जाए।"

4. अपीलार्थी ईश्वर चन्द्र अग्रवाल की सेवाएं तारीख 15 दिसम्बर, 1969 के आदेश से समाप्त की जाती हैं। वह आदेश इस प्रकार है —

> "पंजाब के राज्यपाल, पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय की सिफारिश पर, श्री ईश्वर चन्द्र अग्रवाल पी० सी० एस० (न्यायिक शाखा) को, समय-समय पर यथासंशोधित, पंजाब सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) नियम, 1951 के भाग 'डी' में नियम 7(3) के अधीन, सेवा से तत्काल अलग करते हैं।"

5. अपीलार्थियों का कहना है कि राज्य के सांविधानिक या प्रारूपिक प्रधान के रूप में राज्यपाल अधीनस्थ न्यायिक सेवा के सदस्यों की नियुक्ति तथा उन्हें पद से हटाने की शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग केवल व्यक्तिगत रूप से कर सकते हैं। राज्य का कहना यह है कि राज्यपाल, राज्य सरकार की कार्यपालिक शक्तियों के समान संविधान द्वारा या संविधान के अधीन स्वयं को प्रदत्त नियुक्ति और पद से

हटाने की शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर ही कर सकते हैं, न कि व्यक्तिगत रूप से ।

6. अपीलार्थियों ने **सरदारी लाल** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय का आश्रय लिया है; जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल अपना समाधान हो जाने पर अनुच्छेद 311(2) के परन्तुक (ग) के अधीन यह आदेश करते हैं कि किसी अधिकारी को पदच्युत, पद से हटाने या पंक्तिच्युत करने के लिए जांच करना राज्य की सुरक्षा के हित में इष्टकर नहीं है, वहां राष्ट्रपति या राज्यपाल का समाधान उसका व्यक्तिगत समाधान है। इस नजीर के आधार पर अपीलार्थियों ने यह दलील दी है कि संविधान के अनुच्छेद 234 के अधीन अधीनस्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा उनकी सेवाओं की समाप्ति राज्यपाल द्वारा व्यक्तिगत रूप से की जानी है ।

7. ये दो अपीलें एक वृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष इस प्रश्न पर विचार करने के लिए की गई थीं कि क्या **सरदारी लाल वाले मामले**[1] में किया गया यह विनिश्चय ठीक है कि जहां राष्ट्रपति या राज्यपाल का समाधान होना है, वहां वह समाधान उनका व्यक्तिगत समाधान है ।

8. अपीलार्थियों का कहना है कि संविधान के अनुच्छेद 234 के अधीन राज्यपाल की शक्तियों का प्रयोग उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से किया जाना है, जिसके कारण ये हैं ।

9. पहली यह बात है कि राज्यपाल के सांविधानिक कृत्य, शक्तियां तथा कर्त्तव्य अनेक हैं। राज्यपाल को ये शक्तियां नाम से प्रदान की गई हैं । संविधान के द्वारा तथा संविधान के अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की गई है कि अनेक मामलों में वह स्वविवेकानुसार कार्य करे। राज्यपाल को नाम से प्रदान किए गए ये सांविधानिक कृत्य तथा शक्तियां, साथ ही वे जिनके संबंध में राज्यपाल को स्वविवेकानुसार कार्य करना है, अनुच्छेद 162 के साथ पठित अनुच्छेद 154 के अर्थ में राज्य की कार्यपालिका शक्तियां नहीं हैं ।

10. दूसरी बात यह है कि संविधान के अनुच्छेद 163 के अधीन जब राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो, तब वह अपनी मंत्रिपरिषद् से सहायता और मंत्रणा ले सकता है। जब संविधान के द्वारा या संविधान के अधीन उससे यह अपेक्षा की गई है कि वह स्वविवेकानुसार कार्य

[1] (1971) 3 एस० सी० आर० 461.

1974(8) eILR(PAT) SC 1

करे तथा जब उससे यह अपेक्षा की गई है कि वह अपने सांविधानिक कृत्यों का प्रयोग करे, जो राज्यपाल के रूप में उसे उसके नाम से प्रदान किए गए हैं, तब वह अपनी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा के बिना कर सकता है।

11. तीसरी बात यह है कि अनुच्छेद 163 के अधीन मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रण संविधान के अनुच्छेद 166(3) के अधीन मंत्रिपरिषद् के नाम राज्यपाल द्वारा किए गए राज्य की सरकार के कार्य के बंटवारे से भिन्न है। अनुच्छेद 166(3) के अधीन सरकार के कार्य का बंटवारा अपनी मंत्रिपरिषद् के माध्यम से राज्यपाल द्वारा अपने कृत्यों का बंटवारा या प्रत्यायोजन करना कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग का उदाहरण है। सहायता और मंत्रणा राज्यपाल द्वारा राज्य की कार्यपालिका शक्तियों के प्रयोग पर लगाया गया सांविधानिक निर्बन्धन है। राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा के बिना, राज्य की इन कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सांविधानिक रूप से सक्षम नहीं होगा।

12. चौथी बात यह है कि अनुच्छेद 154 (1) के अधीन राज्य की कार्यपालिका शक्ति या शक्तियां राज्यपाल में निहित हैं। अनुच्छेद 234 के अधीन अधीनस्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा पद से हटाने की शक्तियां पंजाब राज्य के कामकाज के नियमों के अधीन बंटवारे में मंत्रियों को नहीं दी गई हैं। काम-काज के नियमों का नियम 18 बताता है कि उस दशा को छोड़कर, जिसमें किसी अन्य नियम द्वारा अन्यथा उपबंधित हो, सब मामलों का निपटारा मामूली तौर से भारसाधक मंत्री द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन किया जाएगा जो अपने विभाग में ऐसे मामलों के निपटारे के लिए स्थायी आदेशों द्वारा ऐसे निदेश दे सकेगा, जैसा कि वह ठीक समझे। पंजाब सेवा नियम के भाग 'डी' में नियम 7 (2), जो यह कहता है कि पंजाब का राज्यपाल उच्च न्यायालय की सिफारिश पर किसी भी अधीनस्थ न्यायाधीश को कोई भी कारण बताए बिना, सेवा से हटा सकेगा या परिवीक्षा की अवधि के दौरान उसे उसके अधिष्ठायी पद पर वापिस भेज सकेगा, इस प्रकार का है जो बंटवारे में किसी मंत्री को नहीं दिया जा सकता है। कामकाज के नियमों का नियम 18 अपवादों के अध्यधीन है और सेवा नियमों का नियम 7 (2) ऐसा अपवाद है। इसलिए अपीलार्थियों का यह कहना है कि सेवा नियमों के पूर्वोक्त नियम 7 (2) के साथ पठित अनुच्छेद 234 के अधीन अधीनस्थ न्यायाधीशों को पद से हटाने की राज्यपाल की शक्ति बंटवारे में किसी मंत्री को नहीं दी जा सकती है।

 1974(8) eILR(PAT) SC 1

13. संघ की ओर से महान्यायवादी (अटार्नी जनरल), पंजाब राज्य की ओर से अपर महा सालिसिटर तथा हरियाणा राज्य की ओर से उनके काउन्सेल ने यह दलील दी है कि राष्ट्रपति संघ का सांविधानिक प्रधान है तथा राज्यपाल राज्य का सांविधानिक प्रधान है और राष्ट्रपति एवं राज्यपाल संविधान के द्वारा या संविधान के अधीन अपने को प्रदत्त सभी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग मंत्रि-परिषद् की सहायता और मंत्रणा पर करते हैं ।

14. उन सब अनुच्छेदों में, जिनमें राष्ट्रपति की शक्तियों और कृत्यों की बात कही गई है, उनके संदर्भ में प्रयुक्त पद 'शक्तियों और कृत्यों के संबंध में' 'समाधान हो गया है', 'की यह राय है' 'जैसा वह उचित समझे' तथा 'यदि ऐसा प्रतीत हो, राज्यपाल के मामले में, उसकी शक्तियों और कृत्यों की बाबत 'का समाधान हो जाये' 'की यह राय है' और 'जैसा वह उचित समझे' पदों का प्रयोग किया गया है ।

15. अनुच्छेद 163 (1) यह कहता है कि जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों अथवा उनमें से किसी को स्वविवेक से करे, उन बातों को छोड़कर, राज्यपाल को अपने कृत्यों का निर्वहन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा । अनुच्छेद 163 (2) यह कहता है कि यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं कि जिसके संबंध में इस संविधान के द्वारा या अधीन राज्यपाल से अपेक्षित है कि वह स्वविवेक से कार्य करे, तो राज्यपाल का स्वविवेक से किया हुआ विनिश्चय अंतिम होगा तथा राज्यपाल द्वारा की गई किसी बात की मान्यता पर इस कारण कोई आपत्ति न की जाएगी कि उसे स्वविवेक से करना, या न करना, चाहिए था । कृत्यों के प्रयोग के संबंध में "स्वविवेक से" शब्दों संदर्भ से अलग करके अपीलार्थियों ने यह दलील दी है कि मंत्रिपरिषद् कार्यपालिक कृत्यों में राज्यपाल को सहायता और मंत्रणा दे सकती है । किन्तु राज्य न्यायिक सेवा तथा अन्य राज्य सेवाओं में अधिकारियों की नियुक्ति तथा उन्हें पद से हटाने के सांविधानिक कृत्यों का प्रयोग राज्यपाल द्वारा स्वविवेक से व्यष्टितः तथा व्यक्तिगत रूप से किया जाएगा ।

16. यह बात ध्यान देने की है कि यद्यपि अनुच्छेद 74 में यह कहा गया है कि राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा, फिर भी अनुच्छेद 74 में ऐसा कोई उपबंध नहीं है, जैसा कि अनुच्छेद 163 में है और

जिसके अनुसार सहायता और मंत्रणा का उपबंध उन बातों को छोड़कर किया गया है, जिनमें उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को स्वविवेक से करे।

17. इस बात का पता लगाना आवश्यक है कि राज्यपाल की कुछ शक्तियों के सम्बन्ध में 'स्वविवेक से' शब्दों का प्रयोग क्यों किया गया है और ऐसा राष्ट्रपति के मामले में क्यों नहीं किया गया है।

18. प्रारूप संविधान का अनुच्छेद 143 संविधान में अनुच्छेद 163 हो गया। प्रारूप संविधान के अनुच्छेद 144 (6) में यह कहा गया था कि मंत्रियों की नियुक्ति तथा उनको पद से हटाने की बाबत उस अनुच्छेद के अधीन राज्यपाल के कृत्यों का प्रयोग वह स्वविवेक से करेगा। प्रारूप अनुच्छेद 144 (6) उस समय पूरी तरह से लुप्त कर दिया गया जबकि अनुच्छेद 143 संविधान का अनुच्छेद 164 बनाया गया। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 153 (3) में यह कहा गया था कि अनुच्छेद के खण्ड (2) उपखण्ड (क) और (ग) के अधीन राज्यपाल के कृत्यों का प्रयोग उसके द्वारा स्वविवेक से किया जाएगा। जब यह अनुच्छेद हमारे संविधान का अनुच्छेद 174 बना तो प्रारूप अनुच्छेद 153(3) को पूरी तरह से लुप्त कर दिया गया। प्रारूप अनुच्छेद 175 (परन्तुक) में कहा गया था कि राज्यपाल "विधेयक को स्वविवेक से इस संदेश के साथ वापिस कर सकेगा कि सदन विधेयक पर पुनर्विचार करे।" जब इसे अनुच्छेद 200 बनाया गया तो "राज्यपाल स्वविवेक से कार्य करे" शब्द लुप्त कर दिए गए। अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल उस विधेयक को इस संदेश के साथ वापिस कर सकेगा कि सदन उस विधेयक पर पुनर्विचार करे। प्रारूप अनुच्छेद 188 में गम्भीर आपात् सम्बन्धी उपबन्धों की चर्चा की गई थी। प्रारुप अनुच्छेद 188 के खण्ड (1) और (4) में राज्यपाल द्वारा शक्तियों के प्रयोग के संबंध में "स्वविवेक से" शब्दों का प्रयोग किया गया था। प्रारूप अनुच्छेद 188 को पूरी तरह से लुप्त कर दिया गया। लोक सेवा आयोग के गठन तथा उसके कर्मचारियों की चर्चा करने वाले प्रारूप अनुच्छेद 285 (1) और (2) में अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति तथा विनियम बनाने के संबंध में राज्यपाल द्वारा शक्तियों के प्रयोग की बाबत "स्वविवेक से" पद का प्रयोग किया गया था। जब इसे अनुच्छेद 316 बनाया गया तो राज्यपाल द्वारा शक्तियों के प्रयोग की बाबत "स्वविवेक से" शब्द लुप्त कर दिए गए। जिला और प्रान्तीय परिषदों के कार्यों और संकल्पों के रद्द या निलम्बित करने से सम्बद्ध षष्ठ अनुसूची के पैरा 15(3) में यह कहा गया था कि उस पैरा के अधीन राज्यपाल के कृत्यों का प्रयोग उस द्वारा स्वविवेक से किया जाएगा।

1974(8) eILR(PAT) SC 1

संविधान अधिनियमित करते समय षष्ठ अनुसूची के पैरा 15 का उप-पैरा 3 लुप्त कर दिया गया।

19. इसलिए इन दृष्टान्त स्वरूप प्रारूप अनुच्छेदों की पृष्ठभूमि में यह बात समझ में आती है कि प्रारूप संविधान के अनुच्छेद 143 में जो हमारे संविधान का अनुच्छेद 163 बन गया, राज्यपाल का कुछ शक्तियों के संबंध में "अपने स्वविवेक से" पद का प्रयोग क्यों किया गया।

20. जिन अनुच्छेदों में "अपने स्वविवेक से कार्य करता है" पद का प्रयोग राज्यपाल की शक्तियों और कृत्यों के संबंध में किया गया है, वे ऐसे अनुच्छेद हैं जो राज्यपाल के विशेष उत्तरदायित्व का उल्लेख करते हैं। यह अनुच्छेद 371क(1)(ख), 371(क) (1)(घ) 371क(2) (ख) तथा 371क (2च) हैं। षष्ठ अनुसूची में दो पैरा अर्थात् 9(2) और 18 (3) ऐसे हैं जिनमें अपने स्वविवेक से शब्दों का प्रयोग राज्यपाल की कुछ शक्तियों के संबंध में किया गया है। पैरा 9 (2) उन स्वामिस्वों की रकम के अवधारण के संबंध में है, जो खनिजों के खोदने या निकालने में पट्टे अनुज्ञप्तिधारियों या पट्टेदारों द्वारा जिला परिषद् को दी जानी है। पैरा 18 (3) 21 जनवरी, 1972 से लुप्त कर दिया गया।

21. अनुच्छेद 371क(1)(ख) के उपबंधों में नागालैण्ड राज्य में विधि और व्यवस्था के बारे में और उस बारे में की जाने वाली कार्यवाही के सम्बन्ध में अपने व्यक्तिगत निर्णय के प्रयोग के संबंध में नागालैण्ड के राज्यपाल के विशेष उत्तरदायित्व का उल्लेख किया गया है। परन्तुक में यह कहा गया है कि 'अपने स्वविवेक से' किया गया राज्यपाल का विनिश्चय अंतिम होगा तथा वह प्रश्नास्पद नहीं किया जाएगा।

22. अनुच्छेद 371 क(1)(घ) कहता है कि राज्यपाल तुनसँग जिले के लिए प्रादेशिक परिषद् गठित करने की व्यवस्था करने वाले नियम अपने स्वविवेक से बनाएगा।

23. अनुच्छेद 371 क(2)(ख) यह कहता है कि उसमें वर्णित कालावधि के लिए तुनसँग जिले और शेष राज्य के बीच कतिपय निधियों के साम्यापूर्ण बटवारे के लिए राज्यपाल अपने स्वविवेक से प्रबन्ध करेगा।

24. अनुच्छेद 371 क(2)(च) यह कहता है कि तुनसँग जिले से सम्बद्ध सब विषयों पर अंतिम विनिश्चय राज्यपाल द्वारा अपने स्वविवेक से किया जाएगा।

25. संघ की कार्यपालिका शक्ति अनुच्छेद 53(1) के अधीन राष्ट्रपति में निहित है। राज्य की कार्यपालिका शक्ति अनुच्छेद 154(1) के अधीन राज्यपाल में निहित है । अनुच्छेद 53(1) तथा 154(1) में "संघ" तथा "राज्य" पदों का प्रयोग संविधान में समाविष्ट फैडरल सिद्धान्तों को प्रकट करने के लिए किया गया है। अनुच्छेद 53(1) के अधीन राष्ट्रपति में निहित संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करते हुए "कोई भी कार्यवाही भारत सरकार द्वारा राष्ट्रपति के नाम से की जाती है, जैसा कि अनुच्छेद 77(1) से विदित होगा। इसी प्रकार अनुच्छेद 154 (1) के अधीन राज्यपाल में निहित राज्यपालिका शक्ति का प्रयोग करते हुए की गई कोई भी कार्यवाही राज्य सरकार द्वारा राज्यपाल के नाम में की जाती है जैसा कि अनुच्छेद 166(1) से विदित होगा।

26. राष्ट्रपति के नाम में या राज्यपाल के नाम में "कार्यपालिका कार्यवाही" के सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। राज्य के किसी भी कार्यपालिक कार्य के लिए न तो राष्ट्रपति और न राज्यपाल वाद ला सकता है और न उस पर वाद लाया जा सकता है। सबसे पहली बात यह है कि अनुच्छेद 300 यह कहता है कि भारत संघ के नाम से भारत सरकार वाद ला सकेगी अथवा उसके विरुद्ध वाद लाया जा सकेगा तथा किसी राज्य के नाम से या उस राज्य की सरकार वाद ला सकेगी अथवा उसके विरुद्ध वाद लाया जा सकेगा। दूसरी बात यह है कि धारा 361 यह कहती है कि कार्यवाहियां भारत सरकार तथा राज्य सरकार के विरुद्ध चलाई जा सकेगी, किन्तु राष्ट्रपति या राज्यपाल के विरुद्ध नहीं। अनुच्छेद 300 तथा 361 ये बताते हैं कि सरकार की कार्यपालिक कार्यवाहियों के लिए न तो राष्ट्रपति पर और न राज्यपाल पर कोई वाद लाया जा सकता है इसका कारण यह है कि न तो राष्ट्रपति और न राज्यपाल कार्यपालिक कृत्यों को निजी रूप से या व्यकितगत रूप से करते हैं। राष्ट्रपति के नाम से की गई कार्यपालिक कार्यवाही संघ की कार्यवाही है। राज्यपाल के नाम से की गई कार्यपालिक कार्यवाही राज्य की कार्यपालिक कार्यवाही है।

27. हमारे सबिधान में ब्रिटिश नमूने की संसदीय अथवा कैबिनेट शासन प्रणाली संघ तथा राज्यों, दोनों के लिए सामान्य रूप से नियत की गई है। इस प्रणाली के अधीन राष्ट्रपति संघ का सांविधानिक या प्ररूपिक प्रधान होता है और वह संघ द्वारा या संघ के अधीन स्वयं को प्रदत्त अपनी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर करते हैं। अनुच्छेद 103 मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा की दृष्टि से अपवाद है, क्योंकि उसमें विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबन्ध किया गया है कि राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग की राय के अनुसार ही कार्य करेगा। यह बात तब होगी जब

यह प्रश्न पैदा हो कि संसद के किसी भी सदन का कोई भी सदस्य अनुच्छेद 102 के खण्ड (1) में वर्णित अनर्हताओं का भागी हो गया है या नहीं।

28. हमारे संविधान में यथा समाविष्ट शासन की कैबिनेट प्रणाली के अधीन, राज्यपाल राज्य का सांविधानिक या प्ररूपिक प्रधान है और उन क्षेत्रों को छोड़कर जिनमें राज्यपाल से संविधान द्वारा या संविधान के अधीन यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों का प्रयोग स्वविवेक में करे, वह संविधान के अधीन या संविधान द्वारा अपने को प्रदत्त अपनी सब शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर करता है।

29. कार्यपालिक शक्ति सामान्यतः वह अविशिष्ट (रैसीड्यू) कही जाती है जो विधायी या न्यायिक शक्ति के अन्तर्गत नहीं आती है। किन्तु कार्यपालिक शक्ति के अन्तर्गत विधायी या न्यायिक दोनों प्रकार की कार्यवाहियां हो सकती हैं। राष्ट्रपति की विधायी शक्तियों के, उदाहरण के लिए अनुच्छेद 123 के सिवाय जिसके अन्तर्गत अध्यादेश प्रख्यापित करने की भी शक्ति है, राष्ट्रपति की सब शक्तियां और कृत्य तथा राज्यपाल की विधायी शक्तियों के, उदाहरण के लिए अनुच्छेद 213 के सिवाय जिसके अन्तर्गत अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्तियां हैं, राज्यपाल की सब शक्तियां और कृत्य, राष्ट्रपति की दशा में अनुच्छेद 53(1) के अधीन राष्ट्रपति में निहित संघ की कार्यपालिक शक्तियां हैं और राज्यपाल की दशा में अनुच्छेद 154 (1) के अधीन राज्यपाल में निहित राज्य की विधायी शक्तियां हैं। अनुच्छेद 77 के खण्ड (2) या (3) का प्रवर्तन अनुच्छेद 77 के खण्ड (1) के अधीन भारत सरकार की कार्यपालिक कार्यवाहियों तक ही सीमित नहीं है। इसी प्रकार, अनुच्छेद 166 के खण्ड (2) या (3) का प्रवर्तन अनुच्छेद 166 के खण्ड (1) के अधीन राज्य की सरकार की कार्यपालिक कार्यवाहियों तक ही सीमित नहीं है। अनुच्छेद 77 के खण्ड (3) में "भारत सरकार का कार्य" पद और अनुच्छेद 166 के खण्ड (3) में "राज्य सरकार का कार्य" पद इस प्रकार के हैं, जिनमें सभी कार्यपालिक कार्य सम्मिलित हैं।

30. जिन मामलों में राष्ट्रपति या राज्यपाल संविधान द्वारा या संविधान के अधीन स्वयं को प्रदत्त अपने कृत्यों का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा से करता है, उन सब मामलों में वह इस कार्य को क्रमशः अनुच्छेद 77 (3) और 166 (3) के अनुसार भारत सरकार या राज्य सरकार का कार्य सुविधापूर्वक चलाने के लिए या मंत्रियों में कार्य के बटवारे के लिए नियम बनाकर करता है। जहां कहीं संविधान यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा किसी शक्ति या कृत्य के प्रयोग के लिए राष्ट्रपति या राज्यपाल

के समाधान की अपेक्षा करता है, उदाहरण के लिए अनुच्छेद 123, 213, 311 (2) परन्तुक (ग), 317:352 (1), 356 और 36घ, वहां संविधान द्वारा अपेक्षित समाधान राष्ट्रपति या राज्यपाल का व्यक्तिगत समाधान नहीं है, बल्कि कैबिनेट शासन प्रणाली के अधीन सांविधानिक अर्थ में राष्ट्रपति या राज्यपाल का समाधान है। वह समाधान मंत्रिपरिषद् का समाधान है, जिसकी सहायता और मंत्रणा पर राष्ट्रपति या राज्यपाल सामान्यतः अपनी-अपनी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करता है। न तो अनुच्छेद 77(3) में और न अनुच्छेद 166 (3) में शक्ति के किसी प्रत्यायोजन के लिए उपबन्ध किया गया है। अनुच्छेद 77 (3) और 166 (3) दोनों ये उपबंध करते हैं कि अनुच्छेद 77(3) के अधीन राष्ट्रपति और अनुच्छेद 1166 (3) के अधीन राज्यपाल, सरकार का कार्य अधिक सुविधापूर्वक चलाने के लिए तथा उक्त कार्य के मंत्रियों में बंटवारे के लिए नियम बनाएंगे। कामकाज के नियमों और उक्त कामकाज के मंत्रियों के बीच बंटवारे से यह प्रकट होता है कि इन दो अनुच्छेदों अर्थात् राष्ट्रपति के मामले में अनुच्छेद 77 (3) तथा राज्य के राज्यपाल के मामले में अनुच्छेद 166 (3) के अधीन बनाए गए कामकाज के नियमों के अधीन किसी मंत्री या अधिकारी का विनिश्चय क्रमशः राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय है।

31. इसके अतिरिक्त कार्य (अर्थात् कामकाज) के नियम तथा मंत्रियों में कार्य का बटवारा राष्ट्रपति की दशा में अनुच्छेद 53 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों से और राज्यपाल की दशा में अनुच्छेद 154 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों से उपबन्धित है। राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग या तो स्वयं या उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा किया जाएगा। राष्ट्रपति के मामले में अनुच्छेद 74 तथा राज्यपाल के मामले में अनुच्छेद 163 के ये उपबन्ध कि यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल को सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, कार्य के नियमों का स्रोत है। ये उपबन्ध राष्ट्रपति या राज्यपाल के नाम में सरकार की कार्यपालिक शक्तियों और कृत्यों के निर्वहन के लिए हैं। जहां किसी मंत्री को सौंपे गए कृत्यों का पालन उसके विभाग में नियोजित किसी अधिकारी द्वारा किया जाता है, वहां विधि की दृष्टि में कोई भी प्रत्यायोजन नहीं है, क्योंकि संविधान की दृष्टि से अधिकारी का कार्य या विनिश्चय मंत्रियों का ही होता है। अधिकारी तो किसी भी मंत्री को प्रदत्त किए गए कृत्यों के निवर्हन के लिए एक साधन मात्र है। (हैल्सबरीज लाज आफ इंग्लैण्ड, चतुर्थ संस्करण, जिल्द 1 पैरा 748 पृष्ठ 170 तथा **कार्लटन लि० बनाम वर्क्स कमिश्नर**[1]—देखिए)।

---

[1] (1943)2 आल० ई० आर० 560.

32. इंग्लैंड की सांविधानिक विधि का यह बुनियादी सिद्धांत है कि मंत्रियों को हर एक कार्यपालिक कार्य की जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए। इंग्लैंड में प्रभु कभी भी स्वयं अपने दायित्व पर कोई कार्य नहीं करता। प्रभु की शक्ति इस व्यवहारिक नियम द्वारा नियंत्रित की जाती है कि क्राउन को चाहिए कि अपने कार्यों की जिम्मेदारी निबाहने के लिए वह किसी न किसी परामर्शदाता को नियुक्त करे। इन परामर्श दाताओं को हाउस आफ कामन्स का विश्वास प्राप्त होना चाहिए। इंग्लैंड की सांविधानिक विधि का यह नियम हमारे संविधान में भी समाविष्ट है। भारतीय संविधान में केन्द्र में तथा राज्यों में संसदीय तथा उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार की कल्पना की गई है, न कि राष्ट्रपतिमूलक सरकार की। सांविधानिक प्रधान के रूप में राज्यपाल की शक्तियां किसी और प्रकार की नहीं हैं।

33. इस न्यायालय ने निरन्तर रूप से यही मत अपनाया है कि राष्ट्रपति की शक्तियां तथा राज्यपाल की शक्तियां इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली के अधीन क्राउन की ही शक्तियों के समान हैं। (**राम जवाया कपूर** बनाम **पंजाब राज्य**[1], **ए० संजीवी नायडू** बनाम **मद्रास राज्य**[2], **यू० एन० राव** बनाम **श्रीमती इन्दिरा गांधी**[3] **देखिए**)। **राम जवाया कपूर**[1] वाले मामले में न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए मुख्य न्यायाधिपति मुखर्जी ने विधिक स्थिति इस प्रकार बतलाई है; सरकारी नीति का निर्धारण करना तथा उसे विधि का रूप देने की मुख्य जिम्मेदारी कार्यपालिका पर है। इस जिम्मेदारी के प्रयोग की पुरोभाव्य शर्त यह है कि कार्यपालिका को राज्य की विधायी शाखा का विश्वास बनाए रखना होना चाहिए। विधान का पुरःस्थापन, व्यवस्था को बनाए रखना, सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण का उन्यन, विदेशी नीति का निदेशन तथा राज्य के सामान्य प्रशासन का संचालन, जैसी सब बातें कार्यपालिक कृत्य हैं। कार्यपालिका का काम यह है कि वह विधानमंडल के नियंत्रण के अधीन कार्य करे। संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्ररूपिक (फार्मल) या सांविधानिक प्रधान है। वास्तविक कार्यपालिक शक्तियां कैबिनेट के मंत्रियों में निहित की गई हैं। राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होती है जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है।

34. कुछ बस मार्गों के राष्ट्रीयकरण की स्कीम के सबंध में मद्रास सरकार के कामकाज (कार्य) के नियमों के अधीन राज्यपाल के कृत्यों पर इस न्यायालय

---

[1] (1955)2 एस० सी० आर० 225, 236-37.

[2] (1970)3 एस० सी० आर० 505, 51ऽ.

[3] (1971) सप्लीमेंट एस० सी० आर० 46.

द्वारा **संजीवी नायडू**[1] वाले मामले में विचार किया गया था। इस स्कीम की विधिमान्यता पर आक्षेप इस आधार पर किया गया था कि यह स्कीम राज्य सरकार द्वारा नहीं बल्कि राज्य के सचिव द्वारा बनाई गई थी जो उसे मद्रास सरकार के कामकाज नियमों के नियम 23क के अधीन प्रदत्त की गई शक्तियों के अनुसरण में बनाई गई थी।

35. इस स्कीम को अनेक कारणों से अनुमोदन प्रदान किया गया था राज्य की सरकार के कार्य के अधिक सुविधापूर्वक चलाने के लिए राज्यपाल अनुच्छेद 166(3) के अधिनियम बनाता है। राज्यपाल मंत्रियों में विभिन्न विषयों का बंटवारा ही नहीं कर सकता है बल्कि, इससे भी आगे बढ़कर वह किसी विशेष कृत्य के निर्वहन के लिए किसी अधिकारी विशेष को अभिहित (डेसिगनेट) कर सकता है। किन्तु ऐसा कार्य मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा पर किया जा सकता है। विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी कैबिनेट शासन प्रणाली का मर्म यह है कि व्यष्टिक इण्डिवीजुअल मंत्री अपने मंत्रालय में किए गए या न किए गए हर कार्य के लिए जिम्मेदार होता है। प्रत्येक प्रशासन में, विनिश्चय सिविल सेवकों द्वारा किए जाते हैं। मंत्री नीति निर्धारित करता है। मंत्रिपरिषद् मुख्य नीतियों को तय करती है। जब कोई सिविल सेवक कोई विनिश्चय करता है तो वह यह कार्य अपने मंत्री के प्रत्यायुक्त (डेलीगेट) के रूप में नहीं करता है। वह सरकार की ओर से कार्य करता है। अधिकारी सरकार के हाथ पैर हैं न कि उसके प्रत्यायुक्त। जहां कृत्य किसी मंत्री के सुपुर्द किए जाते हैं और उनका संपालन मंत्रालय के विभाग में नियोजित किसी पदाधिकारी द्वारा किया जाता है, वहां विधि की दृष्टि में कोई भी प्रत्यायोजन नहीं है। क्योंकि सांविधानिक रूप से पदधारी का कार्य विनिश्चय मंत्री का ही कार्य या विनिश्चय होता है।

36. **राव**[2] वाले मामले में इस न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करना पड़ा था कि 27 दिसम्बर, 1970 को राष्ट्रपति द्वारा लोक सभा के विघटित कर दिए जाने पर क्या प्रधानमंत्री तत्पश्चात् पद को धारण करने से विरत हो गया था। हमारा संविधान इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली के अनुसार बनाया गया है। सरकारी नीति बनाने की प्राथमिक जिम्मेदारी कार्यपालिका की है। कार्यपालिका का यह काम है कि वह विधानमण्डल द्वारा लागू किए गए नियंत्रण के अधीन कार्य करे। राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है, सहायता और मंत्रणा पर कार्य करता है। चूंकि कैबिनेट को विधानमण्डल के बहुमत का विश्वास प्राप्त

1 (1970) 3 एस० सी० आर० 505.

2 (1971) सप्लीमेंट एस० सी० आर० 46.

होता है, इसलिए विधायी और कार्यपालिक दोनों प्रकार के कृत्यों का वास्तविक नियन्त्रण उसी में सकेन्द्रित रहता है। अनुच्छेद 74(1) जो यह कहता है कि विधायी कृत्यों में राष्ट्रपति को सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा, आज्ञापक है। उस मामले में यह दलील स्वीकार नहीं की गई कि राष्ट्रपति द्वारा सदन का विघटन कर दिए जाने पर कोई भी प्रधानमंत्री नहीं रहेगा, क्योंकि इस प्रकार कार्यपालिक सरकार की सम्पूर्ण रचना ही बदल जाएगी। यदि मंत्रिपरिषद् नहीं होगी तो राष्ट्रपति को अपने कृत्यों के सम्पादन में सहायता और मंत्रणा देने के लिए कोई प्रधान मंत्री या मंत्रीगण नहीं होंगे। चूंकि कोई मंत्रिपरिषद् नहीं होगी, इसलिए ऐसा कोई व्यक्ति भी नहीं होगा, जो लोकसभा के, प्रति उत्तरदायी हो। अनुच्छेद 75 में उपबंध यह है कि प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी। और अन्य मंत्री प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर नियुक्त किए जाएंगे। अनुच्छेद 75(3) कहता है कि मंत्रिपरिषद् सरकार (लोकसभा) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। यही उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार का आधार है। उस समय जबकि लोकसभा का सत्रावसान हो चुका है, या उसका विघटन हो चुका है, अनुच्छेद 75(3) अपने आप लागू नहीं किया जा सकता। किन्तु अनुच्छेद 75(2) और 75(3) के साथ अनुच्छेद 74(1) के आज्ञात्मक स्वरूप को सामंजस्यपूर्वक पढ़ने से यह परिणाम निकलता है कि राष्ट्रपति अपने कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग ऐसी मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा के बिना नहीं कर सकता है जिसका प्रधान प्रधानमंत्री हो। इस प्रसंग में, प्रधानमंत्री के कर्तव्यों तथा मंत्रियों में कार्य के बंटवारे के लिए अनुच्छेद 77(3) और 78 का पूरी तरह से प्रवर्तन किया जाना है।

37. इस न्यायालय के विनिश्चय का मुख्य आधार **किंग एम्परर** बनाम **शिवनाथ बनर्जी और अन्य**[1] वाली मूलभूत नजीर है। गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935, जिसे 1935 का ऐक्ट कहा गया है, की धारा 59(3) में रखे गए उपबंध हमारे संविधान के अनुच्छेद 166(3) जैसे ही थे। उस मामले में भी, यह सवाल उठा था कि क्या डिफेन्स आफ इंडिया रूल्स के रूल 26 में उपवर्णित विषयों के सम्बन्ध में गवर्नर के समाधान से उसका व्यक्तिगत समाधान अभिप्रेत है। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ये मामले उसके द्वारा सामान्य रीति से, जिसमें प्रान्तीय सरकार के कार्यपालिक कार्य किए जाते हैं और विशिष्टतः 1935 वाले ऐक्ट की धारा 49 तथा 1935 के ऐक्ट की उपरवर्णित धारा 59 के अधीन बनाए गए कामकाज के नियमों के उपबंधों के अधीन निपटाए जा सकते थे। निरोध के आदेश के सम्बन्ध में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वे नियमित

[1] (1944-45) 72 आई० ए० 241.

और उपयुक्त है। कामकाज के नियमों के अधीन सांविधानिकता की उपधारणा भी की जानी थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस उपधारणा का विरोध किया जा सकता था।

38. जुडीशियल कमेटी ने यह अभिनिर्धारित किया कि मोटे तौर पर कार्यपालिक प्राधिकारी के अन्तर्गत कोई भी विनिश्चय तथा ऐसे विनिश्चय संबंधी कार्य का क्रियान्वित किया जाना दोनों सम्मिलित हैं। जुडीशियल कमेटी ने यह कहा कि ऐसे मामलों में जैसे कि डिफेन्स आफ इन्डिया रूल्स के रूल 26 के अधीन गवर्नर द्वारा निपटाए जाने थे, सामान्य रीति से, जिसमें कि प्रांतीय सरकार का कार्यपालिक कामकाज, 1935 के ऐक्ट के उपबंधों के अधीन चलाया जाता था और विशिष्टतः कामकाज के नियमों के अधीन, वह कार्यवाही करेगा।

39. इस न्यायालय ने **विजय लक्ष्मी काटन मिल्स लि० बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य**[1] में राज्य सरकार के भूमि और राजस्व विभाग के सहायक सचिव द्वारा हस्ताक्षर की गई अधिसूचना की विधिमान्यता पर विचार किया था। दलील यह दी गई थी कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति संविधान के अनुच्छेद 154 (1) के अधीन राज्यपाल में निहित है और इसलिए, भूमि विकास और योजना अधिनियम (लैण्ड डवलपमेंट एण्ड प्लानिंग ऐक्ट) की धारा 4 और 6 के अधीन जिसके अधीन अधिसूचना निकाली जाएगी, राज्यपाल के समाधान की परिकल्पना की गई थी। अनुच्छेद 166 (3) के अधीन बनाए गए कामकाज (कार्य) के नियमों के अधीन राज्यपाल ने कुछ विषय मंत्रियों को बांट दिए थे। भारसाधक मंत्री ने उन विषयों को विनिर्दिष्ट करते हुए, जिनके प्रति निदेश उसके पास भेजे जाने थे, एक स्थायी आदेश पारित किया।

40. **विजय लक्ष्मी काटन मिल्स**[1] वाले मामले में कामकाज के नियमों से यह पता चलता है कि सरकार को कामकाज अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न विभागों द्वारा किया जाना था। भूमि और भूराजस्व का बंटवारा उसी विभाग (पोर्टफोलियों) के मंत्री के विभाग के कार्य के रूप में किया गया था। भारसाधक मंत्री को मामलों के निपटारे के बारे में स्थायी आदेश निकालने की शक्ति प्राप्त थी। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कामकाज के नियमों के अधीन किसी मंत्री या अधिकारी का विनिश्चय क्रमशः राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय है। राज्यपाल से ऐसा राज्यपाल अभिप्रेत है, जिसको मंत्रियों द्वारा सहायता तथा मंत्रणा दी जाती हो। न तो अनुच्छेद 77 (3) और

---

[1] (1967) 2 एस० सी० आर० 406.

न अनुच्छेद 166 (3) में शक्ति के प्रत्यायोजन के लिए उपबंध किया गया है। यद्यपि राज्य की कार्यपालिका शक्ति वस्तुतः राज्यपाल में निहित है, किन्तु वास्तव में उसका प्रयोग अनुच्छेद 166 (3) के अधीन बनाए गए कार्य के नियमों के अधीन मंत्रियों द्वारा किया जाता है। सरकार के कार्य का बंटवारा मंत्रियों की सहायता और मंत्रणा पर किया गया राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय है।

41. **जयन्तीलाल अमृत लाल शोधन** बनाम **एफ० एन० राना और अन्य**[1] में इस न्यायालय ने आयुक्तों की राज्य-क्षेत्रीय अधिकारित के अन्दर संघ के प्रयोजन के लिए, भूमि अर्जन के संबंध में भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन केंद्रीय सरकार के कृत्य मुम्बई सरकार की सम्मति से मुम्बई राज्य के खण्ड-आयुक्त (कमिश्नर आफ डिवीजन्स) को सौंपने वाले संविधान के अनुच्छेद 258 (1) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई अधिसूचना की विधिमान्यता पर विचार किया। यह अधिसूचना राष्ट्रपति द्वारा 24 जुलाई, 1959 को जारी की गई थी। गुजरात राज्य के बड़ौदा डिवीजन के आयुक्त ने राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई अधिसूचना के अधीन कृत्यों का प्रयोग करते हुए भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 (1) के अधीन यह अधिसूचित किया कि अपीलार्थी की कुछ भूमि लोक प्रयोजन के लिए अपेक्षित है। 1 मई, 1960 को मुम्बई पुर्नगठन अधिनियम 1960 के अधीन महाराष्ट्र और गुजरात नाम के दो राज्य बनाए गए। अपीलार्थी का कहना है कि अनुच्छेद 258 (1) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई अधिसूचना नवनिर्मित गुजरात राज्य की सरकार की सम्मति के बिना प्रभावशील नहीं है।

42. **जयन्ती लाल अमृत लाल सोहन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 258 राष्ट्रपति को इस बात के लिए समर्थ बनाता है कि वे कार्य जो विधानमण्डल विधान द्वारा कर सकता था, अर्थात् जिन कार्यों पर संघ की कार्यपालिका का विस्तार है, उन्हें अधिसूचना में नामित अधिकारियों को सौंपने का कार्य राष्ट्रपति अधिसूचना द्वारा कर सकता है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई अधिसूचना की विधि का बल प्राप्त होगा। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 258 (1) राष्ट्रपति को इस बात के लिए सशक्त करता है कि वह राज्य को ऐसे कृत्य सौंप सके जो संघ में निहित हैं और जो संघ की ओर से राष्ट्रपति द्वारा प्रयोगतव्य है और इसके आगे उसमें यह भी कहा गया कि

[1] (1964) 5 एस० सी० आर० 294.

अनुच्छेद 258 राष्ट्रपति को इस बात के लिए प्राधिकृत नहीं करता है कि वह ऐसी शक्तियां जो संविधान द्वारा अभिव्यक्त रूप से राष्ट्रपति में निहित हैं तथा जो अनुच्छेद 258 (1) के अन्तर्गत नहीं आती हैं, किसी को सुपुर्द करे। इस न्यायालय ने उस उक्ति का दृष्टान्त यह कह कर दिया कि आपात् के दौरान अनुच्छेद268 से 279 के अधीन अध्यादेश प्रख्यापित करने, अनच्छेद 356 के अधीन राज्य में संविधान के तंत्र को विपलता घोषित करने, अनुच्छेद 309 के अधीन वित्तीय अपात् घोषित करने, अनुच्छेद 309 के अधीन संघ के कार्यों के संबंध में पदों पर और सेवाओं में नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती और सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले नियम बनाने की राष्ट्रपति की शक्तियां संघ सरकार की शक्तियां नहीं है, बल्कि संविधान द्वारा राष्ट्रपति में निहित हैं तथा अनुच्छेद 258 (1) के अधीन ऐसी शक्तियां किसी अन्य निकाय या प्राधिकारी को प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती हैं और न उसके सुपुर्द की जा सकती हैं ।

43. **जयन्ति लाल अमृत लाल शोधन**[1] वाले मामले में का निर्णयाधार राष्ट्रपति की शक्तियों तक सीमित है, जो अनुच्छेद 258 के अधीन राज्यों को प्रदान की जा सकती है। अनुच्छेद 258 का आशय ऐसा सर्वग्राही उपबंध करना है जो राष्ट्रपति को ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए जो विधानमण्डल विधान द्वारा प्रयुक्त कर सकता था, राष्ट्रपति द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट किए जाने वाले और तद्द्वारा विहित शर्तों के अधीन अधिकारियों को कृत्य सौंपने के लिए समर्थ बना सके। अनुच्छेद 258 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई अधिसूचना का परिणाम यह है कि संघ के प्रयोजनों के लिए भूमि के अर्जन के वास्ते बनाए गए उपबंधों के प्रसंग में अधिनियम में जहाँ कहीं 'समुचित सरकार' पद आता है, वहां उस पद के स्थान पर, "उस क्षेत्र पर जिसमें कि वह भूमि स्थित है, क्षेत्राधिकार रखने वाली समुचित सरकार या खण्ड का आयुक्त" शब्द प्रतिस्थापित किए गए समझे गए थे ।

44. संघ कार्यपालिक कृत्यों तथा राष्ट्रपति के कार्यपालिक कृत्यों के बीच, जो अन्तर इस न्यायालय द्वारा किया गया है, उससे ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकलता है कि राष्ट्रपति सरकार का सांविधानिक प्रधान नहीं है। अनुच्छेद 74(1) में राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का संपादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् का उपबंध किया गया है। अनुच्छेद 163(1)में राज्यपाल को सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् का

---

[1] (1964) 5 एस० सी० आर० 294.

1974(8) eILR(PAT) SC 1

ऐसा ही उपबध किया गया है। इसलिए राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त कृत्य चाहे संघ के कृत्य हों या राष्ट्रपति के कृत्य, उनका प्रयोग हर हालत में मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा से ही किया जाना है और यही बात, उन कृत्यों को छोड़कर जिनमें राज्यपाल को स्वविवेक का प्रयोग करना होता है, राज्यपाल के कृत्यों के संबंध में भी, सही है।

45. **सरदारी लाल**[1] वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 311 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ग) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा एक आदेश किया गया था। वह आदेश इस प्रकार था : "राष्ट्रपति का यह समाधान हो गया है कि आप लोक सेवा में बने रहने दिए जाने के लिए अयोग्य हैं तथा आप को सेवा से पदच्युत किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 311 के खण्ड 2 परन्तुक के उपखण्ड (ग) के अधीन उनका यह भी समाधान हो गया है कि राज्य की सुरक्षा के हित में जांच करना समीचीन नहीं है।" इस आदेश को चुनौती इस आधार पर दी गई थी कि यह आदेश संयुक्त सचिव द्वारा हस्ताक्षरित किया गया था। तथा भारत के राष्ट्रपति के नाम से निकाला गया आदेश था और यह कि संयुक्त सचिव राष्ट्रपति की ओर से प्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता था।

46. **सरदारी लाल**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इसी न्यायालय के दो विनिश्चयों का आधार लिया था। उनमें से एक **मोतीराम डेका आदि बनाम जनरल मैनेजर, एन० ई० एफ० रेलवे, मालिगांव पाण्डु**[2] है और दूसरा **जयन्ती लाल अमृतलाल शोधन**[3] वाला मामला है। मोतीराम डेका वाले मामले का आश्रय इस प्रस्थापना के समर्थन में लिया गया था कि अपने प्रसाद (मर्जी) से किसी सरकारी सेवक को पदच्युत करने की शक्ति संविधान के अनुच्छेद 53 और 154 की परिधि के बाहर है तथा वह शक्ति राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा किसी अधीनस्थ अधिकारी को प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती है तथा उस शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा उसी रीति में किया जा सकता है जो संविधान में विहित है। **सरदारी लाल**[1] वाले मामाले में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 311(2) के परन्तुक के खण्ड (ग) से यह अभिप्रेत है कि उस उपबंध के अधीन राष्ट्रपति के कृत्य संघ के किसी सिविल सेवक के मामले में किसी दूसरे को प्रत्यायोजित नहीं किए जा सकते हैं और राष्ट्रपति को इस बाबत व्यक्तिगत समाधान करना होता है कि राज्य की

---

1 (1971) 3 एस० सी० आर० 461.
2 (1964) 5 एस० सी० आर० 683.
3 (1964) 5 एस० सी० आर० 294.

1974(8) eILR(PAT) SC 1

सुरक्षा के हित में ऐसी जांच करना जो अनुच्छेद 311(2) द्वारा विहित है, समीचीन नहीं है इस दृष्टिकोण के संबंध में इस न्यायालय ने **जयन्ती लाल अमृत लाल शोधन**[1] वाले मामले में व्यक्त किए गए इस अधिनिर्धारण का आश्रय लिया था कि अनुच्छेद 311(2) के अधीन राष्ट्रपति की शक्तियां प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती हैं। सरदारी लाल वाले मामले में इस न्यायालय ने यह भी कहा था कि विनिश्चयों में इस बात पर साधारणतः सहमति है कि ऐसे कार्यपालिक कृत्य जो कुछ अनुच्छेदों द्वारा सुपुर्द किए गए हैं, और जिनमें राष्ट्रपति को कुछ तथ्यों या अवस्थाओं के अस्तित्व के बारे में स्वयं अपना समाधान करना होता है, किसी दूसरे को प्रत्यायोजित नहीं किए जा सकते हैं।

47. सरदारी लाल वाले मामले में किया गया विनिश्चय कि कार्यपालिक शक्ति या कृत्यों का प्रयोग करते समय राष्ट्रपति को व्यक्तिगत रूप से अपना समाधान करना चाहिए और यह कि राष्ट्रपति के कृत्य प्रत्यायोजित नहीं किए जा सकते हैं, विधि का सही प्रतिपादन नहीं है तथा अनेक विनिश्चयों में जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, समादिष्ट इस न्यायालय के सुस्थापित तथा एकरूप दृष्टिकोण के विरुद्ध है। ये विनिश्चय वर्ष 1955 से लेकर वर्ष 1971 तक के हैं। इन विनिश्चयों के नाम **राय साहब राम जवाया कपूर** बनाम **पंजाब राज्य**[2], **यू० एन० आर० राव** बनाम **श्रीमती इन्दिरा गांधी**[3] **और ए० संजीवी नायडू बनाम मद्रास राज्य**[4] हैं। सरदारी लाल वाले मामले में इन विनिश्चयों का न तो उल्लेख किया गया था और न इस पर विचार किया गया था।

48. राष्ट्रपति एवं राज्यपाल सांविधानिक या प्ररूपिक प्रधान हैं। उन क्षेत्रों को छोड़कर जिनमें संविधान के द्वारा या संविधान के अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों का प्रयोग स्वविवेक से करे, राष्ट्रपति एवं राज्यपाल संविधान द्वारा या संविधान के अधीन स्वयं को प्रदत्त शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर करते हैं। जहां भी किसी शक्ति या कृत्य के राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा प्रयोग के लिए संविधान में राष्ट्रपति या राज्यपाल के समाधान की अपेक्षा की गई है, वहां संविधान द्वारा अपेक्षित समाधान राष्ट्रपति या राज्यपाल का व्यक्तिगत समाधान नहीं है, बल्कि कैबिनेट शासन प्रणाली में सांविधानिक अर्थ में राष्ट्रपति या राज्यपाल का समाधान अर्थात् उसकी मंत्रिपरिषद् का समाधान है जिसकी सहायता और मंत्रणा

[1] (1964) 5 एस० सी० आर० 294.

[2] (1955) 2 एस० सी० आर० 225.

[3] (1971) सप्लीमेंट एस० सी० आर० 46.

[4] (1970) 3 एस० सी० आर० 505.

पर राष्ट्रपति या राज्यपाल सामान्यत: अपनी शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करते हैं। अनुच्छेद 77(3) और 166(3), इन दोनों अनुच्छेदों में से किसी के अधीन बनाए गए कार्य के नियमों के अधीन किसी भी मंत्री या अधिकारी का विनिश्चय क्रमश: राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय होता है। इन अनुच्छेदों में किसी भी प्रत्यायोजन के लिए उपबन्ध नहीं किया गया है। इसलिए कामकाज के नियमों के अधीन मंत्री या अधिकारी का विनिश्चय राष्ट्रपति या राज्यपाल का विनिश्चय है।

49. **मोती राम डेका**[1] वाले मामले में विचाराधीन प्रश्न यह था कि क्या नियम 148(3) और 149(3) द्वारा, जिनमें अनुबद्ध सूचना द्वारा स्थायी सरकारी सेवक की सेवाओं की समाप्ति के लिए उपबन्ध किया गया है, अनुच्छेद 311 का अतिक्रमण हुआ है। **मोती राम डेका**[1] वाले मामले में बहुमत की राय यह थी कि नियम 148(3) और 149(3) वहां तक अविधिमान्य हैं जहां तक कि वे अनुच्छेद 311(2) के उपबन्धों से असंगत हैं। **मोदी राम डेका**[1] वाले मामले का विनिश्चय इस प्रस्थापना के लिए नजीर का काम नहीं दे सकता कि अपने प्रसाद (मर्जी से किसी सेवक को पदच्युत करने की शक्ति अनुच्छेद 154 की परिधि के बाहर) है तथा राज्यपाल द्वारा वह किसी अधीनस्थ अधिकारी को प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती है।

50. **उत्तर प्रदेश राज्य और** अन्य बनाम **बाबूराम उपाध्याय**[2] में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 311 के उपबन्धों के अधीन अपने प्रसाद (मर्जी) से पदच्युत करने की राज्यपाल की शक्ति अनुच्छेद 154 के अधीन कार्यपालिक शक्ति नहीं है बल्कि सांविधानिक शक्ति है तथा इस प्रकार की नहीं है कि जो उसके अधीनस्थ अधिकारियों को प्रत्यायोजित की जा सके। बाबूराम उपाध्याय वाले मामले के निर्णय का प्रभाव यह है कि राज्यपाल अपनी मर्जी किसी अधिकारी को प्रत्यायोजित नहीं कर सकता और न किसी अधिकारी द्वारा उस मर्जी के प्रयोग के लिए किसी विधि द्वारा उपबंध कर सकता है जिसका परिणाम यह है कि पदच्युति को लागू होने वाले नियम हर अधिकारी के लिए बाध्यकर हैं, यद्यपि वे राज्यपाल की अध्यारोही मर्जी के अध्यधीन हैं। इसका तात्पर्य यह होगा कि अधिकारी नियमों द्वारा आबद्ध हैं, किन्तु राज्यपाल नहीं है।

51. **बाबूराम उपाध्याय**[2] वाले मामले में बहुमत का दृष्टिकोण रिपोर्ट के

---

[1] (1964) 5 एस० सी० आर० 683.

[2] (1961) 2 एस० सी० आर० 679.

1974(8) eILR(PAT) SC 1

पृष्ठ 701 पर सात प्रस्थापनाओं के रूप में कथित किया गया था। प्रस्थापना संख्या 2 यह है कि अपनी मर्जी से लोक सेवक को पदच्युत करने की शक्ति अनुच्छेद 154 की परिधि के बाहर है और इसलिए वह राज्यपाल द्वारा किसी भी अधीनस्थ अधिकारी को प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती तथा उसका प्रयोग उसके द्वारा उसी रीति में किया जा सकता है जो संविधान द्वारा विहित है। प्रस्थापना संख्या 3 और 4 इस प्रकार है : किसी लोक सेवक का सेवाकाल (टेन्योर) संविधान के अनुच्छेद 311 में वर्णित परिसीमाओं या अर्हताओं के अध्यधीन है। संसद् या राज्यों के विधानमण्डल इस सेवाकाल को निराकृत या उपान्तरित करने वाली कोई विधि इस प्रकार नहीं बना सकते हैं जिससे कि अनुच्छेद 311 द्वारा विशेषित अनुच्छेद 310 के अधीन राष्ट्रपति या राज्यपाल को प्रदत्त अध्यारोही शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सके। प्रस्थापना संख्या 5 यह है कि संसद् या राज्यों के विधानमण्डल अनुच्छेद 311 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 310 के अधीन राष्ट्रपति या राज्यपाल की शक्तियों को प्रभावित किए बिना ऐसे सदस्य की सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाली विधि बना सकते हैं जिसमें अनुशासनिक कार्यवाही के तौर पर कार्रवाई सम्मिलित है। प्रस्थापना संख्या 6 यह है कि संसद् या विधानमण्डल अनुच्छेद 311 में समाविष्ट "युक्तियुक्त अवसर" के सिद्धांत के विस्तार तथा उसकी अन्तर्वस्तुओं को अधिकथित और विनियमित करने वाली विधि भी बना सकते हैं, किन्तु उक्त विधि न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन होगी।

52. इस सब प्रस्थापनाओं का पुनर्विलोकन **मोती राम डेका**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के बहुमत के निर्णय में किया गया था। इस न्यायालय ने यह कहा था कि प्रस्थापना संख्या 2 को संख्या 3, 4, 5 और 6 वाली प्रस्थापनाओं के रूप में विनिर्दिष्ट पश्चात्वर्ती । प्रस्थापनाओं के साथ पढ़ा जाना चाहिए। मोती राम डेका वाले मामले की नजीर यह है कि किस प्रक्रिया और किस प्राधिकारी द्वारा उक्त शक्ति का प्रयोग किया जा सकेगा, यह विहित करने के लिए विधि बनाई जा सकती है । राष्ट्रपति या राज्यपाल की पदच्युति करने की मर्जी इसलिए प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती है और इसलिए वह अनुच्छेद 311 के अध्यधीन भी है। सही स्थिति जिसका प्रतिपादन **मोती राम डेका**[1] वाले मामले में किया गया है, यह है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुच्छेद 310 और 311 एक साथ पढ़े जाने चाहिए, किन्तु अनुच्छेद 311 की परिधि और उसका प्रभाव एक बार अवधारित कर दिए जाने पर अनुच्छेद 310(1) की परिधि इस अर्थ

---

[1] (1964) 5 एस० सी० आर० 683.

1974(8) eILR(PAT) SC 1

में सीमित हो जानी चाहिए कि अनुच्छेद 311(2) के अधीन आने वाले मामलों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 310(2) में वर्णित मर्जी का प्रयोग अनुच्छेद 311 की अपेक्षाओं के अनुसार किया जाना चाहिए।

53. **मोती राम डेका**[1] वाले मामले के विनिश्चय के बाद **बाबूराम उपाध्याय**[2] वाले मामले का बहुमत द्वारा प्रतिपादित मत अब अच्छी विधि नहीं हैं। यह सिद्धांत कि किसी लोक सेवक को पदच्युत करने या पद से हटाने की शक्ति का प्रयोग केवल राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा व्यक्तिगत रूप से किया जाना है, अनुच्छेद 311 के इन स्पष्ट शब्दों से गलत साबित होता है कि कोई भी व्यक्ति, जो संघ की असैनिक सेवा का सदस्य है, अथवा संघ या राज्य के अधीन असैनिक पद धारण करता है, वह अपनी नियुक्ति करने वाले अधिकारी से निचले किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा, अथवा पद से हटाया नहीं जाएगा। "अपनी नियुक्ति करने करने वाले प्राधिकारी से निचले किसी प्राधिकार द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा या पद से हटाया नहीं जायगा" शब्द यह संकेत करते हैं कि राष्ट्रपति या राज्यपाल की शक्ति का प्रयोग ऐसे अधिकारियों द्वारा किया जाता है जिनको राष्ट्रपति या राज्यपाल अपनी शक्ति प्रदान या प्रत्यायोजित करता है।

54. संविधान के ऐसे उपबंध, जिनमें राज्यपाल से अभिव्यक्त रूप से यह अपेक्षा की गई है कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वविवेक में करे, उन अनुच्छेदों में हैं, जिनके प्रति निर्देश किया जा चुका है। दृष्टान्त स्वरूप अनुच्छेद 239(2) कहता है कि जब राज्यपाल पार्श्वस्थ संघ राज्य क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया जाता है तो वह ऐसे प्रशासक के रूप में अपने कृत्यों को अपनी मंत्रिपरिषद् से स्वतन्त्ररूपेण करेगा। दूसरे अनुच्छेद, जिनमें राज्यपाल के विवेक का उल्लेख किया गया है, षष्ठ अनुसूची के पैरा 9(2) और 18(3) तथा अनुच्छेद 371क (क)(ख) 371 (1)(घ), 371 (2)(ख) तथा 371क(2)(च) हैं। राज्यपाल को प्रदत्त विवेक से यह अभिप्रेत है कि राज्य के सांविधानिक या प्ररूपिक प्रधान के रूप में वह शक्ति उसमें निहित है। इस प्रसंग में अनुच्छेद 356 के प्रति निर्देश किया जा सकता है, जिसमें यह कहा गया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति के पास यह रिपोर्ट भेज सकेगा कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें राज्य सरकार राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चला सकती है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 200 से यह अपेक्षित है कि जिस विधेयक से यदि वह विधि हो गया हो, तो राज्यपाल की राय में उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण होगा कि वह स्थान जिसकी पूर्ति के लिए वह न्यायालय इस

[1] (1964) 5 एस० सी० आर० 683.

[2] (1961) 2 एस० सी० आर० 679.

संविधान द्वारा बनाया गया, सत्ताविहीन हो जाएगा तो विधेयक को राज्यपाल आरक्षित कर ले।

55. अनुच्छेद 356 के अधीन रिपोर्ट भेजते समय यदि राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा के विरुद्ध भी करता है तो वह न्यायानुमत होगा। इसका कारण यह है कि सांविधानिक तंत्र की विफलता मंत्रिपरिषद् के आचरण के कारण भी हो सकती है। यह वैवेकिक शक्ति राज्यपाल को इसलिए दी गई है कि वह राष्ट्रपति के पास रिपोर्ट भेज सके। किन्तु राष्ट्रपति को चाहिए कि वह सब मामलों में अपनी मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा पर ही कार्य करे। इस प्रसंग में अनुच्छेद 263(2) की यह बात स्पष्ट करने योग्य है कि स्वविवेक में किया हुआ राज्यपाल का विनिश्चय अन्तिम होगा तथा उसकी विधिमान्यता पर कोई आपत्ति नहीं की जाएगी। ऐसी रिपोर्ट पर राष्ट्रपति द्वारा की गई कार्यवाही की बात और है। राष्ट्रपति अपनी मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा पर कार्य करता है। अन्य सब बातों में जहां राज्यपाल स्वविवेक से कार्य करता है, वह अपनी मंत्रिपरिषद् के साथ मिलकर (सहमति से) कार्य करेगा। राज्यपाल को मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा के विरुद्ध कार्य करने की इजाजत देकर राज्य के अन्दर एक समानान्तर शासन के लिए उपबन्ध करना संविधान का उद्देश्य नहीं है।

56. इसी प्रकार, अनुच्छेद 200 में एक और उदाहरण ऐसा है, जिसमें राज्यपाल अपनी मंत्रिपरिषद् की किसी मंत्रणा पर ध्यान दिए बिना कार्य कर सकेगा। ऐसी सब बातों में, जिनमें राज्यपाल को अपने विवेक का प्रयोग करना है, उसे चाहिए कि वह अपने कर्तव्यों का निर्वहन अपने सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार करे। राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह ऐसे ढंग से कार्य करे जो राज्य के लिए हानिकारक न हों।

57. ऊपर वर्णित कारणों से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि जो विषय कार्यपालिका में निहित हैं, उन सब विषयों में राष्ट्रपति या राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर कार्य करता है जिसका प्रधान संघ की दशा में प्रधानमंत्री और राज्य की दशा में मुख्यमंत्री होता है, चाहे फिर उन कृत्यों का स्वरूप कार्यपालिक हो या विधायी, न तो राष्ट्रपति और न ही राज्यपाल कार्यपालिक कृत्यों को व्यक्तिगत रूप से करते हैं। इन अपीलों का सम्बन्ध जिला न्यायाधीश से अन्य व्यक्तियों की राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्ति से है, जो राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग तथा उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात् इस प्रकार राज्यपाल द्वारा की जानी है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 234 में प्रकल्पित है। राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों की नियुक्ति

या उनकी पदच्युति या पद से हटाया जाना राज्यपाल का व्यक्तिगत कृत्य नहीं है बल्कि संविधान के अधीन उस निमित्त बनाए गए नियमों के अनुसार किया गया राज्यपाल का कार्यपालिक कृत्य है ।

58. इन अपीलों में दो नियम, जो पंजाब सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) में परिवीक्षाधीन की सेवा की समाप्ति के सम्बन्ध में हैं, पंजाब सिविल सेवा (दण्ड और अपील) नियम 1952 का नियम 9 तथा पंजाब सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) नियम 1951 के भाग 'डी' का नियम 7(3) हैं, जिन्हें इसमें इसके पश्चात् नियम 9 और 7 कहा गया है । अपीलार्थी शमशेर सिंह की सेवाएं नियम 9 के अधीन तथा ईश्वर् चन्द्र अग्रवाल की सेवायें नियम 7(3) के अधीन समाप्त की गई थीं ।

59. नियम 9 में यह उपबन्ध किया गया है कि जहां किसी परिवीक्षाधीन के नियोजन को चाहे परिवीक्षाकाल के दौरान या उसकी समाप्ति पर, किसी विनिर्दिष्ट भूल के लिए या असमाधानप्रद सेवा-अभिलेख या प्रतिकूल रिपोर्टों के कारण जिनमें सेवा के लिए अनुपयुक्तता विवक्षित हो, समाप्त करना हो, तो परिवीक्षाधीन को ऐसी प्रस्थापना के आधार बतायें जाएंगें और नियुक्ति को खत्म करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित किए जाने के पहले उसके विरुद्ध हेतुक दर्शित करने का अवसर दिया जाएगा ।

60. पूर्वोक्त नियम 7(3) में यह उपबन्ध किया गया है कि सेवा के किसी सदस्य की परिवीक्षा की अवधि के समापन पर, राज्यपाल उच्च न्यायालय की सिफारिश पर उसकी नियुक्ति को तब पुष्ट कर सकेगा जबकि वह किसी स्थायी रिक्तता में कार्य कर रहा हो या उस दशा में जबकि उसके कार्य या आचरण के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय द्वारा यह रिपोर्ट की जाती है कि वह असमाधानप्रद है तो उसे सेवा से अलग कर सकेगा या यदि उसका कोई पूर्ववर्ती मूल पद हो तो उसे उस पद पर प्रतिवर्तित कर सकेगा या उसके परिवीक्षाकाल को बढ़ा सकेगा और तत्पश्चात् ऐसे आदेश पारित कर सकेगा जैसे कि वह प्रथम परिवीक्षाकाल के अवसर पर पारित कर सकता था ।

61. दण्ड और अपील नियमों के नियम 9 में परिवीक्षाधीन् व्यक्ति के नियोजन के समापन की प्रस्थापना के आधारों की जांच परिकल्पित है । दूसरी ओर नियम 7 राज्यपाल को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह उच्च न्यायालय की सिफारिश पर उसकी पुष्टि करे या उसे सेवा से अलग कर दे या उसे प्रतिवर्तित करे या उसकी परिवीक्षा की कालावधि को बढ़ा दे ।

62. **पुरुषोत्तम लाल ढींगरा** बनाम **भारत संघ**[1] में इस न्यायालय ने परिवीक्षाधीन व्यक्ति की स्थिति पर विचार किया था। न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए मुख्य न्यायाधिपति दास ने कहा था कि जब कोई व्यक्ति परिवीक्षा पर सरकारी सेवा में किसी अस्थाई पद नियुक्त किया जाता है तो परिवीक्षा की कालावधि के दौरान या उसकी समाप्ति पर उसकी सेवा की समाप्ति मामूली तौर से या अपने आप में दण्ड नहीं होगी क्योंकि इस प्रकार नियुक्त सरकारी सेवक को ऐसे पद पर बने रहने का अधिकार उस व्यक्ति से अधिक नहीं है, जो कि किसी प्राइवेट नियोजक द्वारा परिवीक्षा पर नियोजित किसी सेवक को होता है। ऐसी समाप्ति का प्रवर्तन उस पद को धारित करने के किसी सेवक के अधिकार के समपहरण के रूप में नहीं होता है, क्योंकि उसे ऐसा कोई अधिकार ही नहीं है। स्पष्ट है कि ऐसा समापन दण्ड, स्वरूप पदच्युति या पद से हटाया जाना या पंक्तिच्युति नहीं कहा जा सकता है। किन्तु ढींगरा वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति दास के दो महत्त्वपूर्ण कथन हैं। एक यह है कि यदि किसी संविदा या सेवा नियम के अधीन सेवा का खत्म करने का कोई अधिकार है तो सरकार के मन को प्रभावित करने वाला हेतु पूर्ण रूप से असंगत है। दूसरी बात यह है कि यदि सेवा के समापन को अवचार, उपेक्षा, अदक्षता या अन्य अनर्हताओं पर आधृत करने का प्रयत्न किया जाता है तब वह दण्ड है और संविधान के अनुच्छेद 311 का अतिक्रमण करता है। हेतु को असंगत बताने के पीछे तर्क यह है कि उसका प्रभाव मन पर हावी रहता है जिसे हम देख नहीं सकते हैं। इसके विपरीत यदि समापन का आधार अवचार है तो वह वस्तुपरक तथा स्पष्ट है।

63. ऐसी किसी भी सामान्य प्रस्थापना का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है जब किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवाएं, समापन के आदेश में इससे अधिक कुछ भी कहे बिना कि सेवाएं खत्म की जाती हैं, समाप्त की जाएं, तब वह आदेश उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में दण्ड की कोटि में कभी नहीं आ सकता। यदि किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति को किसी भी उचित जांच के बिना, और सेवोन्मोचन के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने का युक्तियुक्त अवसर उसे दिए बिना अवचार या अदक्षता या किसी कारण से सेवोन्मुक्त कर दिया जाता है तो वह किसी विशेष मामले में संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के अर्थ में सेवा से हटाए जाने की कोटि में आ सकता है।

64. परिवीक्षाधीन व्यक्ति की पुष्टि किए जाने के पहले संबद्ध प्राधिकारी पर यह बाध्यता है कि वह इस बात पर विचार करे कि परिवीक्षाधीन का काम

[1] (1958) एस० सी० आर० 828.

समाधानप्रद है या नहीं या यह कि वह उस पद के लिए उपयुक्त है या नहीं। यदि कोई भी नियम इस प्रकार के न हों, जो इस सम्बन्ध में परिवीक्षाधीन पर लागू हों, तो प्राधिकारी यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि उस काम के लिए उसमें पर्याप्त योग्यता के न होने या स्वभावगत या अन्य कारणवश जिसमें नैतिक अधमता सम्मिलित नहीं होगी, वही परिवीक्षाधीन उस कार्य के लिए अनुपयुक्त है और इसलिए उसे पदच्युत किया जाना चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार का दण्ड सम्मिलित नहीं है। कुछ मामलों में प्राधिकारी का यह विचार हो सकता है कि परिवीक्षाधीन के आचरण की जांच किए जाने पर उसकी पदच्युति हो सकती है या उसे पद से हटाया जा सकता है। किन्तु ऐसे मामलों में हो सकता है कि प्राधिकारी कोई भी जांच न करे और परिवीक्षाधीन को यह सोचकर सेवोन्मुक्त कर दे कि परिवीक्षा की समाप्ति के समय कलंकित हुए बिना, उसे किसी दूसरे काम में अपने को अच्छा साबित करने का अवसर मिल जाए। इसके विपरीत यदि परिवीक्षाधीन को अवचार या अदक्षता या भ्रष्ट आचरण के आरोपों के सम्बन्ध में जांच का सामना करना पड़ता है, और यदि उसकी सेवाएं अनुच्छेद 311(2) के उपबन्धों का अनुसरण किए बिना खत्म कर दी जाती है तो वह संरक्षण का दावा कर सकता है। **गोपी किशोर प्रसाद** बनाम **भारत संघ**[1] में यह कहा गया था कि यदि सरकार किसी परिवीक्षाधीन की ईमानदारी या दक्षता पर कोई कलंक लगाए बिना, उसके विरुद्ध सीधी कार्यवाही करती है तो उसके सेवोन्मोचन में दण्ड स्वरूप पद से हटाए जाने का कोई प्रभाव नहीं होगा। आसान रास्ता अपनाने के बजाए सरकार ने उसके विरुद्ध कार्यवाही आरम्भ करने का और उसे बेईमान तथा अदक्ष अधिकारी घोषित करने का कठिन रास्ता अपनाया।

65. जांच करने का तथ्य सदा निश्चयात्मक नहीं होता है। निश्चयात्मक जो बात होती है, वह यह है कि वह आदेश वास्तव में दण्ड स्वरूप दिया गया है या नहीं। (**उड़ीसा राज्य** बनाम **राम नारायण दास**[2]—देखिए)। यदि जांच की जाती है तो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच यह पता लगाने के लिए की जाएगी कि क्या वह आदेश सारतः पदच्युति का आदेश है या नहीं। (**मदन गोपाल** बनाम **पंजाब राज्य**[3]—देखिए) **आर० सी० लेसी** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[4]

---

1 ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 689.

2 (1961) 1 एस० सी० आर० 606.

3 (1963) 3 एस० सी० आर० 716.

4 1962 की सिविल अपील संख्या 590 जिसका विनिश्चय 23 अक्तूबर, 1963 को किया गया।

में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उस मामले की परिस्थितियों में परिवीक्षाधीन के आचरण की जांच करने के बाद पारित प्रवर्तन का आदेश आरम्भिक जांच के रूप में था, जो सरकार को यह तय करने के समर्थ बनाने के लिए था कि अनुशासनात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए या नहीं। जिस परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवा के निबन्धनों में यह उपबन्धित हो कि उसकी सेवा किसी भी सूचना के बिना तथा कोई भी हेतुक बताए बिना खत्म की जा सकती है, वह अनुच्छेद 311(2) के संरक्षण का दावा नहीं कर सकता है। (**आर० सी० बनर्जी** बनाम **भारत संघ**[1] वाला मामला देखिए)। इस बात का समाधान करने के लिए कि किसी अस्थाई कर्मचारी को सेवाओं से अलग करने के लिए कोई कारण है, की गई आरम्भिक जांच के सम्बन्ध में यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसी जांच को अनुच्छेद 311 लागू नहीं होता है। (**चम्पक लाल सी० शाह** बनाम **भारत संघ**[2] देखिए)। इसके विपरीत सेवा के समापन के आदेश में इस कथन के सम्बिन्ध में कि अस्थाई सेवक अवांछनीय है, यह अभिनिर्धारित किया गया कि उसमें दण्ड का तत्त्व सम्मिलित है। (**जगदीश मित्तर** बनाम **भारत संघ**[3] देखिए)।

66. यदि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से इस बात का संकेत मिले कि आदेश का सार यह है कि सेवा का खत्म किया जाना दण्ड स्वरूप है, तब परिवीक्षाधीन अनुच्छेद 311 का लाभ उठाने का हकदार है। आदेश का सार न कि उसका प्ररूप निश्चायक होगा। (**के० एच० फडनीस** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4] देखिए)।

67. नियोजन के नियमों के अधीन किसी अस्थायी सेवक या परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवाओं को खत्म करने वाले ऐसे आदेश को जिसमें और कुछ भी न कहा गया हो, अनुच्छेद 311 लागू नहीं होता। जहां कि विभागीय जांच का विचार किया गया हो, और यदि जांच वास्तव में नहीं की जाती है तो अनुच्छेद 311 तब तक लागू नहीं होगा जब तक यह न साबित कर दिया जाए कि यद्यपि आदेश का प्ररूप आपत्ति कि जाने योग्य नहीं है किन्तु फिर भी वह अवचार पर आधारित किसी रिपोर्ट के अनुसरण में किया गया है। (**बिहार राज्य** बनाम **शिव भिक्षुक**[5] वाला मामला देखिए)।

1 (1964) 2 एस० सी० आर० 135.
2 (1964) 5 एस० सी० आर० 190.
3 ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 449.
4 (1971) सप्लीमेंट एस० सी० आर० 118 = [1971] 2 उम० नि० प० 650.
5 (1971) 2 एस० सी० आर० 191.

68. अपीलार्थी ईश्वर चन्द्र अग्रवाल ने यह कहा है कि उसने दो वर्ष की परिवीक्षा की अपनी आरम्भिक अवधि 11 नवम्बर, 1967 तथा तीन वर्ष की परिवीक्षा की अधिकतम अवधि 11 नवम्बर, 1968 को पूरी कर ली थी और इस कारण कि परिवीक्षा की अधिकतम अवधि के अवसान के बाद भी वह सेवा में बना रहा, उसकी पुष्टि हो गई है। अपीलार्थी ने यह भी कहा है कि उसे पुष्ट किए जाने का हक है, तथा 17 सितम्बर, 1968 को सेवा के काडर में एक स्थायी रिक्ति मौजूद थी और यह कि वह स्थान उसे दे दिया जाना चाहिए।

69. नियम 7(1) यह कहता है कि हर एक अधीनस्थ न्यायाधीश मुख्यतः दो वर्ष की परिवीक्षा पर नियुक्त किया जाए। किन्तु यह अवधि अभिव्यक्त रूप में या विवक्षा के तौर पर समय-समय पर बढ़ाई जा सकेगी जिससे कि यदि कोई विस्तार हो, तो उसे शामिल करके परिवीक्षा की कुल अवधि तीन वर्ष से अधिक न हो। नियम 7(1) का स्पष्टीकरण यह है कि परिवीक्षा की अवधि के बारे में यह समझा जाएगा कि यदि किसी अधीनस्थ न्यायाधीश को उसकी परिवीक्षा की अवधि के अवसान पर पुष्ट नहीं किया जाता है, तो वह अवधि बढ़ा दी गई है।

70. अपीलार्थी के काउन्सेल ने **पंजाब राज्य** बनाम **धर्म सिंह**[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय का आश्रय लिया है जिसमें इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकला था कि जिस कर्मचारी को परिवीक्षा की अधिकतम अवधि के समाप्त होने पर पद में बने रहने दिया जाता है, वह विवक्षित तौर पर अपने पद में पुष्ट हो जाता है। धर्मसिंह वाले मामले में सुसंगत नियम में यह कहा गया था कि परिवीक्षा प्रथमतः एक वर्ष के लिए होगी और उसके परन्तुक के अधीन यह उपबंध था कि परिवीक्षा की अगली अवधि जिसमें विस्तार भी शामिल है, तीन वर्ष से अधिक नहीं होगी। धर्मसिंह वाले मामले में उसे पुष्ट के किसी आदेश के बिना पद में बने रहने दिया गया था और इसलिए सेवा नियमों में प्रतिकूल किसी बात के न होने पर यही समझा जा सकता था कि विवक्षित तौर पर यही समझा जाना चाहिए कि वह पुष्ट कर दिया गया था।

71. इस मामले में विवक्षित तौर पर पुष्टि का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता क्योंकि तीन वर्ष की समाप्ति के पहले ही उच्च न्यायालय ने प्रथमदृष्टया यह निष्कर्ष निकाला था कि अपीलार्थी का काम तथा उसका आचरण दोनों ही समाधानप्रद नहीं हैं और 4 अक्तूबर, 1968 को अपीलार्थी को यह कारण बताने के लिए सूचना दी गई थी कि उसकी सेवा क्यों न खत्म कर दिया जाए। इसके अतिरिक्त नियम 9 से यह प्रकट होता है कि परिवीक्षा की अवधि के

[1] (1968) 3 एस० सी० आर० 1.

दौरान या उसकी समाप्ति पर किसी परिवीक्षाधीन के नियोजन के सम्बन्ध में यह प्रस्थापना की जा सकती है कि उसकी सेवा खत्म कर दी जाए। इस से यह प्रकट होता है कि जब सूचना परिवीक्षा की समाप्ति पर दी जाती है तो परिवीक्षा की अवधि तक तब बढ़ जाती है जब तक कि नियम 9 के अधीन सूचना द्वारा आरम्भ हुई जांच की कार्यवाही समाप्त न हो जाए। इस पृष्टभूमि में नियम 7(1) का स्पष्टीकरण यह बताता है कि कोई अधीनस्थ न्यायाधीश अपनी परिवीक्षा की अवधि की समाप्ति पर पुष्ट नहीं किया जाता है तो उसकी परिवीक्षा की अवधि के बारे में यह समझा जाएगा कि वह कालावधि विवक्षित तौर पर बढ़ा दी गई है। जहां पर कोई अधीनस्थ न्यायाधीश परिवीक्षा की अवधि के अवसान पर पुष्ट न किया गया हो, वहां इस प्रकार का विवक्षित धर्मसिंह वाले मामले में नहीं देखा जा सकता। प्रस्तुत मामले में इस स्पष्टीकरण से यह अभिप्रेत नहीं है कि परिवीक्षा की अवधि विस्तार दो या तीन वर्ष के बीच ही होता है। इसके विपरीत स्पष्टीकरण से यह अभिप्रेत है कि तीन वर्ष की अधिकतम परिवीक्षा की अवधि के सम्बन्ध में उपबंध निदेशात्मक है न कि आज्ञापक जो बात धर्मसिंह वाले मामले में नहीं है और इससे यह अभिप्रेत है कि परिवीक्षाधीन की वास्तव में पुष्टि तब तक नहीं होती जब तक कि पुष्टि का आदेश न कर दिया गया हो।

72. इस संदर्भ में नियम 7(3) के परन्तुक का हवाला दिया जा सकता है। उस नियम का परन्तुक यह कहता है कि तीन वर्ष की परिवीक्षा की अधिकतम अवधि के पूरा होने से, उसे पुष्ट किए जाने का अधिकार तब तक प्राप्त नहीं होगा जब तक कि काडर में कोई स्थायी रिक्ति न हो। नियम 7(3) कहता है कि पुष्टि का अभिव्यक्त आदेश आवश्यक है। नियम 7(3) का परन्तुक नकारात्मक प्ररूप का है अर्थात् यह कि तीन वर्ष की अधिकतम अवधि के पूरे होने से उसे पुष्टि का अधिकार तब तक प्रदान नहीं हो जाएगा जब तक कि काडर में कोइ स्थायी रिक्ति न हो। इस लिए परिवीक्षा की अवधि विवक्षित तौर पर तब तक बढ़ जाती है जब तक कि अपीलार्थी के जैसे किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति के विरुद्ध आरम्भ की गई कार्यवाही समाप्त न हो जाए, जिससे सरकार इस बात का निश्चय कर सके कि परिवीक्षाधीन को पुष्ट किया जाना चाहिए या उसकी सेवा समाप्त की जानी चाहिए। परिस्थितियों तथा तथ्यों और साथ ही यथापूर्वोक्त नियम 7(1) और 7(3) के अर्थ और प्रवर्तन को देखते हुए प्रस्तुत मामले में विवक्षित तौर पर किसी भी पुष्टि का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

1974(8) eILR(PAT) SC 1

73. यहां तक पहुंचने पर नियम 7(3) के द्वितीय परन्तुक के प्रति निर्देश करना आवश्यक है जो 19 नवम्बर, 1970 को अस्तित्व में आया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह परन्तुक प्रस्तुत मामले के तथ्यों में लागू नहीं होता है। उस परन्तुक में यह कहा गया है कि यदि परिवीक्षाधीन के असंतोषजनक कार्य या आचरण के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय की रिपोर्ट परिवीक्षा की अधिकतम अवधि के अवसान के पहले राज्यपाल के पास भेजी जाती है तो उस विषय में आगे की कार्यवाही की जा सकती है और परिवीक्षा की अधिकतम अवधि के अवसान के बाद भी पंजाब का राज्यपाल उसे सेवा से अलग करने वाला या उसे उसके मूल पद पर परिवर्तित करने वाला आदेश पारित कर सकता है। दूसरा परन्तुक उस बात को स्पष्ट कर देता है, जो नियम 7(1) और 7(3) में अस्पष्ट है कि परिवीक्षा की अवधि उस समय तक बढ़ जाती है जब तक कि सूचना द्वारा आरम्भ हुई कार्यवाही या तो परिवीक्षाधीन की पुष्टि के द्वारा या उसके सेवोन्मोचन के द्वारा समाप्त नहीं हो जाती है।

74. प्रस्तुत मामले में, विवक्षित तौर पर कोई भी पुष्टि 4 अक्तूबर, 1968 को दिए गए हेतुक दर्शित करने की सूचना, अभिकथनों के संबंध में सतर्कता निदेशक द्वारा की गई जांच की कार्यवाही और सेवा नियमों के नियम 7 के प्रवर्तन से नहीं हो सकती है। यदि कोई अधीनस्थ न्यायाधीश परिवीक्षा की अवधि के समाप्त होने के पहले पुष्ट नहीं किया जाता है तो परिवीक्षा विवक्षित तौर पर बढा दी जाएगी। चूंकि ईश्वर चन्द्र अग्रवाल परिवीक्षा की अवधि की समाप्ति पर पुष्ट नहीं किया गया था, इसलिए विवक्षित तौर पर होने वाली पुष्टि का कोई प्रश्न नहीं उठता है।

75. ईश्वर चन्द्र अग्रवाल की ओर से दी गई दूसरी दलील यह थी कि सेवा की समाप्ति दण्ड स्वरूप की गई थी। उस आदेश के संबंध में यह कहा गया था कि वह सतर्कता विभाग द्वारा संचालित एक तरफा जांच द्वारा लगाए गए घोर अवचार के आरोपों के आधार पर अपीलार्थी को सेवा से अलग करने का आदेश था। जांच के सम्बन्ध में यह कहा गया था कि वह जांच अनुच्छेद 311 को भंग करके तथा नैसर्गिक न्याय के नियमों का उल्लंघन करके की गई थी। अपीलार्थी ने नियम 9 का आश्रय यह साबित करने के लिए लिया था कि ऐसी किसी भी सेवा समाप्ति की पुरोभाव्य शर्त के रूप में वह न केवल इस बात का हकदार था कि उसे सेवा समाप्ति के आधार बताएं जाएं, बल्कि उसे अपना अभ्यावेदन करने का अवसर भी मिलना चाहिए था। अपीलार्थी ने सबसे पहले यह बात कही कि उसकी सेवाओं का समापन सतर्कता विभाग के निष्कर्षों पर आधारित था

जिसने 8 शिकायतों में दर्ज किए गए अवचार के 15 अभिकथनों की जांच की थी और इसकी इत्तिला उसे कभी नहीं दी गई है।

76. अनुच्छेद 235 के अधीन अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित है। अपीलार्थी का कहना है कि उच्च न्यायालय ने संविधान के उपबंधों के अनुसार कार्य नहीं किया है और जांच अपने नियंत्रण के अधीनस्थ न्यायिक अधिकारियों से कराने के बजाए सतर्कता विभाग द्वारा कराने के लिए सरकार से कह कर उसने उस नियंत्रण का भी परित्याग कर दिया जो उसे अभिप्राप्त है।

77. राज्य की ओर से यह कहा गया है कि उच्च न्यायालय के सुझाव पर सतर्कता निदेशक (विजिलैन्स डाइरेक्टर) द्वारा की गई जांच अपीलार्थी की अनुपयुक्तता के बारे में स्वयं अपना समाधान कराने के लिए नहीं, बल्कि इस बाबत सरकार का समाधान कराने के लिए की गई थी कि ईश्वर चन्द्र अग्रवाल की सेवा समाप्त करने की जो सिफारिश उच्च न्यायालय द्वारा की गई थी, वह स्वीकार की जानी चाहिए।

78. कुछ कारणों से जिनका उल्लेख नहीं किया गया है, उच्च न्यायालय ने सरकार से यह कहा कि वह जांच करने के लिए सतर्कता निदेशक से कहे। यह आश्चर्य की बात है कि उच्च न्यायालय ने जिसका नियंत्रण अधीनस्थ न्यायालयों पर था, सतर्कता विभाग की मार्फत जांच कराने के लिए सरकार से कहा। अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीश उच्च न्यायालय के न केवल नियंत्रण के अधीन काम करते हैं, बल्कि उन पर उच्च न्यायालय की निगरानी तथा अधिकार भी होता है। उच्च न्यायालय ने अपना नियंत्रण बनाए रखने का कर्त्तव्य पूरा नहीं किया है। उच्च न्यायालय द्वारा सतर्कता निदेशक के माध्यम से जांच कराने के लिए कहा जाना अपनी सत्ता के त्याग का कार्य था। राज्य की इस दलील से कि उच्च न्यायालय यह चाहता था कि सरकार अपना समाधान कर ले, मामला और बिगड़ जाता है अनुच्छेद 235 का मुख्य आधार यह है कि राज्यपाल उच्च न्यायालय की सिफारिश पर कार्य करेगा। उच्च न्यायालय को चाहिए था कि वह इस मामले की जांच जिला न्यायाधीशों की मार्फत कराता। अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीश न केवल अनुशासन के लिए बल्कि अपने गौरव के लिए भी उच्च न्यायालय का सहारा ढूंढते हैं। उच्च न्यायालय ने सरकार से यह कह कर कि वह सतर्कता निदेशक की मार्फत जांच कराए, अनुच्छेद 235 की पूरी तरह से अवहेलना की है।

79. सतर्कता निदेशक द्वारा नामनिर्देशित जांच अधिकारी ने अपीलार्थी की अनुपस्थिति में साक्षियों के कथन लेखबद्ध किये। जांच अवचार के अभिकथनों

की सत्यता का पता लगाने के लिए की जानी थी । अपीलार्थी को न तो रिपोर्ट दी गई और न वे कथन ही दिए गए जो जांच अधिकारी द्वारा लेखबद्ध किए गए थे । जांच अधिकारी ने अवचार के अभिकथनों के संबंध में अपने निष्कर्ष दिए । उच्च न्यायालय ने जांच अधिकारी की रिपोर्ट स्वीकार कर ली और 25 जून, 1969 को सरकार को यह लिखा कि रिपोर्ट को देखते हुए यह पता चलता है कि अपीलार्थी सेवा में रखे जाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं था । सेवा के समापन का आदेश रिपोर्ट की सिफारिशों के कारण किया गया था ।

80. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए ईश्वर चन्द्र अग्रवाल की सेवाओं के समापन का आदेश स्पष्टतः दण्ड स्वरूप दिया गया था । उच्च न्यायालय ने ईश्वर चन्द्र अग्रवाल को अनुच्छेद 311 के अधीन संरक्षण देने से इन्कार ही नहीं किया गया, बल्कि अधीनस्थ न्यायाधीशों पर गौरवपूर्ण नियंत्रण से भी अपने को वंचित रखा । इस बात पर विचार करने के लिए कि वह आदेश दण्ड स्वरूप है या नहीं, आदेश का प्ररूप विनिश्चायक नहीं है । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए सेवा को समाप्त करने वाला सीधे सादे शब्दों में व्यक्त किया गया आदेश भी यह प्रमाणित कर सकता है कि कलंकास्पद अवचार के गंभीर प्रकार के अधिकथनों की जांच अनुच्छेद 311 के उपबंधों का व्यतिक्रम करते हुए की गई है । ऐसे मामलों में आदेश के प्ररूप की सरलता का कोई भी महत्व नहीं होगा । यही बात ईश्वर चन्द्र अग्रवाल के मामले में हुई है । सेवा समापन का आदेश अवैध है और अपास्त किया जाना चाहिए ।

81. अपीलार्थी शमशेर सिंह की नियुक्ति अधीनस्थ न्यायाधीश के रूप में मई, 1964 को हुई थी । वह परिवीक्षा पर था । 22 मार्च, 1967 को मुख्य सचिव ने सारतः उन्हीं आरोपों को दोहराते हुए, जो 15 दिसम्बर, 1966 को रजिस्ट्रार द्वारा संसूचित किए गए थे, उसके नाम एक सूचना जारी की और अपीलार्थी से इस बात का हेतुक दर्शित करने के लिए कहा कि उसकी सेवाएं क्यों न समाप्त कर दी जाएं क्योंकि वह अपने काम के लिए अनुपयुक्त पाया गया है। अपीलार्थी ने इसका उत्तर दिया । 29 अप्रैल, 1967 को अपीलार्थी की सेवाएं समाप्त कर दी गई ।

82. कामकाज के नियमों के प्रसंग में अपीलार्थी शमशेर सिंह ने यह कहा कि किसी अधीनस्थ न्यायाधीश का सेवा से हटाया जाना राज्यपाल की व्यक्तिगत शक्ति है और यह शक्ति इस प्रकार की नहीं है कि काम काज के नियमों के

अधीन प्रत्यायोजित की जा सके या वर्णित की जा सके। हम यह पहले ही अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि राज्यपाल अपने कारबार का बंटवारा मंत्रियों में कर सकता है और ऐसा बंटवारा प्रत्यायोजन नहीं है, बल्कि काम काज के नियमों के अधीन परिषद् या अधिकारियों के माध्यम से राज्यपाल द्वारा कार्यपालक शक्ति का प्रयोग है, इस लिए अपीलार्थी की यह दलील कि वह आदेश राज्यपाल के औपचारिक अनुमोदन के बिना था और मुख्यमंत्री द्वारा पारित किया गया था, मान्य नहीं है। वह आदेश राज्यपाल का आदेश है।

83. अपीलार्थी से इस बात का हेतुक दर्शित करने के लिए कहा गया कि उसकी सेवाएं क्यों नं समाप्त कर दी जाएं। इसके लिए चार आधार दिए गए थे। एक यह था कि बार तथा मुकदमों के सम्बन्ध में आने वाली जनता के प्रति अपीलार्थी का व्यवहार अत्यन्त आपत्तिजनक, अपमानपूर्ण, सहयोगविहीन तथा इस प्रकार का होता था, जो किसी न्यायिक अधिकारी के लिए अशोभनीय है। दूसरा आधार यह था कि अपीलार्थी (अपना काम छोड़कर) जल्दी चला जाता था। तीसरा आधार कृषि निरीक्षक (एग्रीकल्चर इन्सपैक्टर) ओम प्रकाश की यह शिकायत थी कि अपीलार्थी ने यह घोषित करके कि यदि वह सुल्तानपुर के खण्ड विकास अधिकारी (ब्लाक डवलपमेंट आफिसर) तथा अपीलार्थी के मित्र मंगल सिंह के साथ सहयोग नहीं करेगा तो वह ओम प्रकाश को किसी मामले में फंसा देगा, अपनी पदीय स्थिति का दुरुपयोग किय था। चौथा आधार प्रेम सागर की यह शिकायत थी कि अपीलार्थी ने प्रेम सागर को अपना साक्ष्य प्रस्तुत करने का पूरा-पूरा अवसर नहीं दिया। प्रेम सागर ने यह भी शिकायत की कि डिक्रीदार ने प्रेम सागर के विरुद्ध डिक्री के निष्पादन के लिए प्रार्थना की और अपीलार्थी ने कार्यपाल की रिपोर्ट मंगाए बिना, मूल निर्णय तथा कब्जे के वारण्ट में कुछ वातें वढ़ा दीं।

84. अपीलार्थी नें हेतुक दर्शित किया। अपीलार्थी ने यह कहा कि उसे एक ही वरिष्ठ अधिकारी के अधीन 6 महीने भी काम करने का अवसर नहीं दिया गया था, जिससे कि उसके ज्ञान, कार्य तथा आचरण के सम्बन्ध में कोई स्वतन्त्र राय बनाई जा सके। 29 अप्रैल, 1967 को पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को सम्बोधित एक पत्र पंजाब-हरियाणा सरकार के उपसचिव से अपीलार्थी को प्राप्त हुआ, जिसमें यह कहा गया था कि अपीलार्थी की सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं।

85. ऐसा प्रतीत होता है कि तिल का ताड़ वनाया गया है। अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप यह था कि उसने प्रेम सागर के विरोधी की सहायता की है। प्रेम

सागर के विरुद्ध चलने वाले मामले की सुनवाई 17 अप्रैल, 1965 को की गई थी। उसी दिन निर्णय सुना दिया गया था। डिक्री के निष्पादन का आवेदन अपीलार्थी द्वारा उसी दिन ग्रहण किया गया था। वारण्ट में अपीलार्थी ने "वृक्ष, कुंआ, फसलें तथा भूमि से संलग्न अन्य अधिकार' शब्द अपने हाथ से लिखे थे। अपीलार्थी द्वारा यह शुद्धि इसलिए की गई थी जिससे कि वारण्ट वाद तथा डिक्री के अनुरूप हो जाए। वारण्ट को डिक्री के साथ सुसंगत बनाने के लिए उसमें शुद्धि करने में कोई दोष नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि काम छोड़कर जल्दी चले जाने की शिकायत तथा ओम प्रकाश कृषि निरीक्षक की शिकायत की बाबत अपीलार्थी को वास्तविक रूप में दण्डित किया गया था और उसे चेतावनी का दण्ड दिया गया था।

86. अपीलार्थी ने नियम 9 के संरक्षण का दावा किया। नियम 9 के अनुसार प्राधिकारी के लिए यह बात ध्यान रखने की है कि परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवायें किसी विनिर्दिष्ट दोष के कारण या ऐसे असमाधानप्रद अभिलेख के कारण, जिसमें अनुपयुक्तता विवक्षित हो, समाप्त की जा सकती हैं। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि अपीयार्थी शमशेर सिंह की सेवा को समाप्त करने का आदेश दण्डस्वरूप दिया गया था। प्राधिकारियों के लिए आवश्यक यह था कि वे अपीलार्थी की उपयुक्तता का पता लगायें। किन्तु उन्होंने अपने को ऐसी बातों में व्यस्त रखा जिनका वास्तव में कोई महत्व नहीं था। प्रेम सागर वाले मामले में अपीलार्थी ने अभिलेखों को ठीक ही शुद्ध किया। यह काम अपीलार्थी ने स्वयं अपने हाथ से किया। सेवोन्मोचन का आदेश नियम 9 का व्यतिक्रम करके दिया गया है। इसलिए सेवा समापन का आदेश अपास्त किया जाता है।

87. अपीलार्थी शमशेर सिंह अब विधि मंत्रालय में नियोजित है। पुष्टि के लिए अपीलार्थी शमशेर सिंह की उपयुक्तता के बारे में फिर से विचार करने के लिए कहने से अब कोई फायदा नहीं है। यदि प्राधिकारियों ने ठीक समय पर थोड़ी और सावधानी से काम लिया होता, तो हो सकता था कि अपीलार्थी अधीनस्थ न्यायिक सेवा को न त्यागता और न अन्य नियोजन की तलाश करता।

88. उपर्युक्त कारणों को देखते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि राष्ट्रपति तथा राज्यपाल कार्यपालिक कर्त्तव्यों में मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर कार्य करते हैं और संविधान के द्वारा उनसे यह अपेक्षा नहीं की गई है कि वे मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा के बिना तथा मंत्रिपरिषद् की

सहायता और मंत्रणा के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से कार्य करें। जहां राज्यपाल को विवेक दिया गया है, वहां राज्यपाल स्वयं अपने निर्णय के अनुसार कार्य करता है। राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग अपनी मंत्रिपरिषद् के साथ सामंजस्य रखते हुए करता है। अधीनस्थ न्यायिक सेवा के सदस्यों की नियुक्ति तथा उनको पद से हटाया जाना राज्यपाल का कार्यपालिक कार्य है, जो संविधान के उपबन्धों के अनुसार मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर किया जाना है। व्यक्तियों की नियुक्तियां करने और उनको पद से हटाने का कार्य मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा पर कार्यपालिका के सांविधानिक प्रधान के रूप में राष्ट्रपति तथा राज्यपाल द्वारा किया जाता है। यही कारण है कि नियुक्ति या पदच्युति के सम्बन्ध में संघ या राज्य के किसी सेवक द्वारा लाया गया वाद संघ या राज्य के विरुद्ध लाया जाता है, न कि राष्ट्रपति या राज्यपाल के विरुद्ध।

89. अपीलार्थियों के सेवा के समापन के आदेश अपास्त किए जाते हैं। अपीलार्थी ईश्वर चन्द्र अग्रवाल को पंजाब सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) का सदस्य घोषित किया जाता है। अपीलार्थी शमशेर सिंह वहां तक सफल होता है जहां तक कि सेवा समापन का आदेश अपास्त किया जाता है। इस बात को देखते हुए कि शमशेर सिंह विधि मंत्रालय में पहले से नियोजित है, उसे वेतन या उन धन संबंधी फायदों को छोड़कर, जो उसे उस समय तक प्रोद्भूत हुए जबकि उसने विधि मंत्रालय में नियोजन स्वीकार किया, कोई भी अनुतोष नहीं दिया जाता है।

90. पंजाब राज्य अपीलार्थियों को खर्चा देगा।

अपीलें मंजूर की गईं।

ई०

न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर—

91. ये दो अपीलें दो छोटे न्यायिक अधिकारियों ने की हैं जिनकी परिवीक्षा उच्च न्यायालय की सिफारिशों के अनुरूप सम्बन्धित मन्त्रियों के आदेशों द्वारा समाप्त कर दी गई है। इस मामले में ऐसे सांविधानिक विवाद्यक अंतर्वलित हैं जिनकी गम्भीर अर्थ-व्याप्ति और व्यापक प्रभाव को यदि स्वीकार कर लिया जाए तो हमारे देश की संसदीय आधारशिला हिल सकती है या उसका रूप नया हो सकता है। अत्यधिक आदर और पूर्ण रूप से सहमत होने से हम केवल यह कह सकते थे कि विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने अभी हाल ही में जो कुछ कहा है, उससे हम सहमत हैं। किन्तु जब पाठ्य-पुस्तकों के समर्थन, विद्वानों के मत का और न्यायिक मत का अवलम्ब लेकर आधारभूत सिद्धान्तों पर अभ्याक्रमण किया जाता है तब चुप रहने की बजाय हम कुछ कहना उचित समझते हैं।

92. फिलहाल हम कुछ आनुषंगिक किन्तु प्रमुख प्रश्नों को, जिनकी बाबत हमारे समक्ष बहस की गई है, एक तरफ रखते हुए हमारे समक्ष के बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करते हैं जिसकी बावत हमारे समक्ष दोनों पक्षों के विद्वान् काउन्सेलों ने विस्तार से बहस की है। इस प्रश्न के कारण ही इस मामले की सुनवाई किए जाने के लिए सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ की आवश्यकता हुई। प्रश्न यह है—क्या हमारी विधिक-राजनैतिक पद्धति वैस्ट मिनिस्टर ढंग की कैबिनेट सरकार के नजदीक है या उसमें ब्रिटिश क्राउन के विपरीत राष्ट्रपति और राज्यपाल का सत्ता के वास्तविक स्रोत के रूप में और वास्तव में सांविधानिक महत्त्व के व्यापक अर्थ में शक्ति का प्रयोग करने वाले कृत्यकारी का अनुध्यान किया गया है। आलंकारिक रूप से कहा जाए तो क्या राष्ट्रपति भवन या राज भवन बकिंघम पैलेस हैं या वे बकिंघम पैलेस और ह्वाइट हाउस के बीच के हैं। इस विवाद्यक से आधारभूत बातें सामने आती हैं।

93. अनुच्छेद 141 द्वारा प्राधिकृत होने से यह न्यायालय एक महान् प्रहरी है और इसका पवित्र कर्त्तव्य यह घोषित करना है कि हमारी सांविधानिक विधि क्या है और हमारी उच्चतम विधि द्वारा सत्ता की परियोजना किस प्रकार बनाई गई है। महत्त्वपूर्ण अभिकरणों (माध्यमों) को मेलजोल से कार्य करना चाहिए और टकराव के मार्ग को टालना चाहिए जिससे 'हम भारत के लोग' का अंतिम प्राधिकार सुनिश्चित रहे और निर्वाचित सदस्यों के सदन के माध्यम से नियन्त्रण बना रहे। इस कार्य का सम्पादन करने में हमें वैचारिक दृष्टिकोणों और काल्पनिक शंकाओं को दूर रखना चाहिए और वैयक्तिक पूर्वानुरागों को बीच में नहीं लाना चाहिए। किन्तु हमारे संविधान के महान् नमूने और उसे प्रेरित करने वाले महान् आदर्शों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

94. यह हो सकता है कि हमारे संविधान के निर्माता राजनीतिक भविष्यदृष्टा न हों जो स्पष्ट दिखाई देने वाले दुरुपयोगों और आचरण-भ्रष्ट परिणतियों को देख सकते। निम्नलिखित कालजयी अवतरण में मिल ने स्वाधीनता प्रेमियों से कहा है—

> "बहुत अधिक प्रचलित प्रतिनिधित्व पद्धति का क्या महत्त्व है यदि निर्वाचक संसद् के सर्वोत्तम सदस्य को चुनने की परवाह नहीं करते हैं किन्तु ऐसे व्यक्ति को चुनते हैं जो निर्वाचित होने के लिए सब से अधिक धन खर्च करेगा। कोई प्रतिनिधिक सभा लोक हित के लिए किस प्रकार कार्य कर सकती है यदि उसके सदस्य खरीदे जा सकें या उनके आचरण में जो खराबी है वह लोक अनुशासन या आत्म नियंत्रण द्वारा सुधारी न जा

सके जिससे वे शांतिपूर्वक बातचीत के अयोग्य हो जायें और सदन में मारपीट पर उतारू हो जायें या बन्दूकों से एक-दूसरे पर गोली चलायें[1] ।"

95. संसदीय संस्थाओं पर जो आन्दोलन हो रहे हैं और भीतर-भीतर असंसदीय कार्य हो रहे हैं और सत्ता की नागवार राजनीति के विरुद्ध हतोत्साह के कारण जो उतावलेपन के कार्य हो रहे हैं, उनके प्रति हम बेखबर नहीं हैं किन्तु हमें जो सीमित कार्य सौंपा गया है वह संविधान का, जैसा वह है, निर्वाचन करने का कार्य है । सुधार के आकर्षक प्रस्तावों में जाना हमारा काम नहीं है । इसके अलावा निर्वचन करने में हमारी सक्रियता शब्द-वितण्डा के दलदल में नहीं फंसनी चाहिए या विधि परायणता द्वारा एक दिशा तक सीमित नहीं हो जानी चाहिए । किन्तु वह मुख्य न्यायाधिपति मार्शल द्वारा पैनी सूझबूझ युक्त राय से चमकदार बनी रहे—

> "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम संविधान का निर्वचन कर रहे हैं जो ऐसा संविधान है जो युगों तक बने रहने के लिए आशयित है और परिणामस्वरूप मानव के कार्यकलापों की विभिन्न कठिनाइयों में अपनाया जाएगा । उन्होंने यह भी कल्पना नहीं की थी कि उसका इतनी कड़ाई से निर्वचन किया जाएगा कि सरकार द्वारा सुचारू रूप से कार्य करते रहने के लिए उसमें हमेशा संशोधन और आमूलचूल पुनरीक्षण किया जाना अपेक्षित होगा ।"

96. जब इस महान् चार्टर में प्रयुक्त कला के शब्दों के अर्थ की अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से खोज करते हैं तब हमारा ध्यान शब्दों की चमक-दमक की ओर नहीं होना चाहिए किन्तु जनता द्वारा सरकार की अन्तर्निहित वास्तविकता की ओर होना चाहिए ।

97. यह आश्चर्यजनक बात है कि राष्ट्रपति और उसकी कैबिनेट जैसे महत्त्वपूर्ण पहलू के सम्बन्ध में हमारे संविधान की विधि पर जिम्मेदार न्यायविदों ने चरम (अर्थात् अतिवादी) मत प्रतिपादित किए हैं और इसलिए खतरनाक तत्त्वों के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सांविधानिक स्थिति पर प्रमाणिक कथन करके उनका पहले की पूर्वानुमान किया जाना चाहिए । यदि उस प्रक्रिया में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णयों को उलटना पड़े जो हमें इसमें भी हिचकना नहीं चाहिए क्योंकि हम अपने कर्त्तव्य का सर्वोत्तम ढंग से पालन तभी करेंगे जब हमारा उद्देश्य लगातार गलती करते जाने के, बजाय अन्तः सही होने का होगा विशेष रूप से जब कि विकासशील देश का सांविधानिक भाग्य बाजी पर लगा हो ।

---

1 दि प्रेसिडेन्ट एण्ड दि गवर्नर्स इन दि इण्डियन कान्स्टीट्यूशन बाई जस्टिस एम० एम० इस्माइल, ओरियन्ट लांगमेन

1974(8) eILR(PAT) SC 1

विद्वान् हैण्ड के शब्दों में सामाजिक इच्छा के पूरक अंग के तौर पर न्यायपालिका के उचित प्रतिनिधित्व स्वरूप को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता।

98. विधिक यवनिका पर तथ्यों के प्रक्षेप ढांचे का अब उतना उल्लेख किया जाता है जितने से इन अपीलों में उठाए गए प्रश्नों को पर्याप्त रूप से समझा जा सके। राज्य न्यायपालिका में नये नियुक्त दो व्यक्ति, अपीलार्थीगण, अपनी विहित परिवीक्षा पूरी कर रहे थे। नियमों द्वारा विहित पूरी अवधि के समाप्त होने के पहले उच्च न्यायालय को इन अधिकारी के आचरण में कुछ अप्रिय बात ज्ञात हुई और नियन्त्रक प्राधिकारी के तौर पर उसने अनुपयुक्तता के आधार पर उनकी सेवा समाप्त करने की आवश्यकता पर विचार किया। दोनों मामलों में बाद में की गई कार्यवाही के अच्छे और बुरे पक्ष अलग-अलग हैं। एक में राष्ट्रपति के शासन के दौरान राज्यपाल ने उच्च न्यायालय की राय पर कार्य करने की बजाय यह दर्शाया कि आरोप अस्पष्ट थे और नई जांच की जानी चाहिए। इसके पश्चात् उच्च न्यायालय ने निगरानी निदेशक से यह प्रार्थना की कि वह कुछ जांच करे जो वास्तव में उसके अधीनस्थ पुलिस अधीक्षक द्वारा की गई। तथापि प्रशासनिक पूर्ण न्यायपीठ ने उपलभ्य सामग्री के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि यथारीति या पूर्ण जांच के बिना साबित आरोपों के आधार पर अधिकारियों की परिवीक्षा अनुपयुक्तता के कारण समाप्त की जानी चाहिए। तब तक मंत्रिपरिषद् अस्तित्व में आ गई थी और उच्च न्यायालय की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् मुख्यमंत्री ने उसके अनुसार कार्यवाही की और अधिकारी की परिवीक्षा समाप्त कर दी। यद्यपि इस कार्यवाही के बारे में राज्यपाल के वैयक्तिक समाधान के लिए न तो प्रयत्न किया गया और न वह प्राप्त किया गया। उस समय तक सुसंगत नियमों के अधीन परिवीक्षा की तीन वर्ष की अधिकतम कालावधि भी समाप्त हो गई थी और एक स्थायी रिक्ति भी हो गई थी। (यह बात सेवा नियमों के अर्थ की बाबत एक अन्य दलील से मेल खाती है)। दूसरे मामले में भी उच्च न्यायालय ने किसी विस्तृत जांच के बिना अधिकारी को पुष्ट करने के लिए अयोग्य अभिनिर्धारित किया और राज्यपाल को निर्देश किए बिना मुख्यमन्त्री ने इस राय को स्वीकार कर लिया।

99. परिवीक्षा समाप्त करने के आदेशों पर कुछ आधारों पर आक्षेप किया गया है। मुख्यतः नियुक्ति की शक्ति राज्यपाल को (केन्द्रीय सेवाओं की दशा में राष्ट्रपति को) है। अतः यह दलील दी गई कि हटाने की शक्ति भी केवल उसी को होनी चाहिए। जहां कहीं भी संविधान में इस प्रकार राज्यपाल या राष्ट्रपति में कोई कृत्य निहित किया गया है, वहां सामग्री पर विचार करने के पश्चात् वह कार्य उसके द्वारा किया जाना चाहिए। संविधान द्वारा जो कुछ उसे व्यादिष्ट

किया गया है उसे वह न तो अपने मन्त्रियों को सौंपेगा और न अपने अधिकारियों को प्रत्यायोजित करेगा। किन्तु वह स्वयं उस कार्य को करेगा। यह माना गया है कि प्रस्तुत मामले में अन्तिम आदेश राज्यपाल को निर्देश किए बिना मुख्य मन्त्री द्वारा किया गया था जिसने वस्तुतः उच्च न्यायालय की सिफारिश मान ली थी। विद्वान् महान्यायवादी और अपर महासॉलिसिटर ने इस दलील के पूरे आधार का ही खण्डन किया है। हमारे राष्ट्रपति और राज्यपाल सांविधानिक सम्राट की प्रतिकृति हैं और उनमें कैबिनेट भी है जो संसद् के प्रति उत्तरदायी है•जिसमें सारभूत रूप से इंग्लैंड के संविधान के कन्वेन्शन्स (अभिसमय) अन्तर्निहित हैं। यदि यह सिद्धान्त सही है तो कामकाज के आबंटन नियमों (एलोकेशन आफ बिज़नेस रूल्स) के अनुसार सरकार मन्त्रियों द्वारा चलाई जाती है और राज्यपाल को सम्राज्ञी से अधिक यह जानने या अनुमोदित करने की ज़रूरत नहीं है कि उसके नाम पर क्या आदेश जारी किए गए हैं। वैस्ट-मिनिस्टर पद्धति का सार यह है कि सम्राज्ञी राज करती है किन्तु मन्त्री शासन करते हैं, सिवाय कुछ मामलों के, जो अब महत्त्वहीन हो गए हैं जिनमें से एक निश्चित रूप से सिविल सेवकों की नियुक्ति या पदच्युति नहीं है। अपीलार्थियों की ओर से श्री सिंघवी की दूसरी महत्त्वपूर्ण दलील यह है कि सारभूत रूप से उच्च न्यायालय और सरकार ने परिवीक्षाधीन व्यक्तियों को बर्खास्त कर दिया है और ऐसा करने में अनुच्छेद 311 के सांविधानिक समादेश और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन किया है। उस आधार पर भी कि आक्षेपित आदेश जिनके द्वारा परिवीक्षा समाप्त की गई है, हानि न पहुंचाने वाले हैं और उनके द्वारा प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन किया गया है। इसका परिणाम अवैधता है। बहस के दौरान इस बात के लिए उच्च न्यायालय की आलोचना की गई कि उसने निगरानी निदेशक—एक पुलिस अधिकारी से यह प्रार्थना की कि वह न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध ययातथ्यता के आरोपों का अन्वेषण करे। तीसरी बात यह है कि क्या न्यायिक कार्मिकों की सेवाओं को समाप्त करने की बाबत उच्च न्यायालय को अन्तिम अधिकार प्राप्त हैं। क्या सरकार उसे कार्यान्वित करने के लिए प्ररूपिक अभिकरण है। न्यायालय में इस पर आक्षेप किया गया। यद्यपि हम इस पर अन्तिम रूप से बाद में बतलाए गए कारणों से कोई कार्यवाही नहीं करते हैं। अन्य कम महत्व की अवैधताओं का भी अवलम्ब लिया गया है। किन्तु विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने अपने निर्णय में उन पर विचार किया है उनसे हम पूर्ण रूप से सहमत हैं। अतः हम दो सैद्धान्तिक दलीलों तक ही सीमित रहते हैं जिनका महत्व न्यायिक परिवीक्षाधीन व्यक्तियों को सेवा से हटाने में मन्त्रियों द्वारा दिए गए आदेशों को निष्प्रभावी करने से बहुत अधिक है और उन पर सावधानी से अध्ययन अपेक्षित है।

100. अपीलार्थियों द्वारा प्रतिपादित पहली व्यापक दलील यह है कि राष्ट्रपति और राज्यपाल इंग्लैंड की सम्राज्ञी के समान ही सांविधानिक स्थिति वाले नहीं हैं किन्तु उनमें वास्तविक शक्ति निहित है जो उन्हें संविधान के स्पष्ट शब्दों द्वारा दी गई है। जो ऐसे ही पद वाले अमरीका के राष्ट्रपति और राज्यपाल को प्राप्त है। विवाद्यक इतना मूलभूत है कि उसको सुलझाने के लिए केवल इतना जानना जरूरी नहीं है कि कौन परिवीक्षाधीन व्यक्ति की योग्यता घोषित कर सकता है किन्तु यह है कि राष्ट्रीय सुरक्षा में कौन युद्ध की घोषणा कर सकता है या राज्य की सांविधानिक मशीनरी के ठप्प हो जाने की उद्घोषणा कौन कर सकता है या संसद् द्वारा पारित बिल पर अनुमति कौन दे सकता है क्योंकि यदि अनुच्छेद 311 के अधीन कतिपय छोटी बातों के लिए राष्ट्रपति का व्यक्तिगत रूप से समाधान जरूरी हो तो यह निश्चित ही है कि अन्य उपबन्धों के अधीन निर्वहित किए जाने की अपेक्षा किए गए अन्य अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों की बाबत उसका व्यक्तिगत रूप से समाधान होना ही चाहिए। नियन्त्रण करने या शासन करने की अपनी पदीय जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के लिए निपटाए जाने वाले कार्यों की बावत यह दलील राज्यपालों पर भी समान रूप से लागू होगी।

101. **सरदारी लाल**[1] के मामले के विनिश्चय से एक छोटा सांविधानिक संकट उत्पन्न हो गया था। उक्त मामले में संविधान के अनुच्छेद 311(2) के परन्तुक के खण्ड (ग) के अधीन राज्य की सुरक्षा के कारणों से जांच न किए जाने की बावत राष्ट्रपति का व्यक्तिगत रूप से समाधान आवश्यक और प्रत्यायोजित न किया जाने वाला माना गया है। फिलहाल हम अनुच्छेदों के सम्बन्ध में उन प्रशासनिक-न्यायिकवत् और विधायी कृत्यों के प्रति निर्देश करेंगे जो विशेष रूप से संविधान द्वारा मन्त्रिपरिषद् के विपरीत राज्य के प्रधान द्वारा किए जाने चाहिए। यदि अपीलार्थी की दलील ठीक होती तो दो प्राधिकारियों या शासकों द्वारा शासन की बागडोर संभालने का प्रश्न उद्भूत हो जाता और संसद् का सर्वोपरि प्राधिकार शक्तिहीन हो जाता जिसके प्रति राष्ट्रपति जिम्मेदार नहीं है किन्तु मन्त्रिपरिषद् जिम्मेदार है। वैस्टमिनिस्टर नमूने की सरकार में जोखिम स्वयं स्पष्ट और बहुत गम्भीर हो जाएगा यदि सरकार का महत्वपूर्ण कार्य वस्तुतः और विधितः राज्य के प्रधान द्वारा किया जाता है और मन्त्रियों को जो सदन के प्रति जिम्मेदार हैं और जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं, केवल प्रशासन करने के लिए धकेल दिया जाता है और वे प्रजातन्त्र के बेताज के राजा की मौजूदगी, उसके प्रसाद और उसकी शक्तियों के अध्यधीन हो जाते हैं।

[1] (1971) 3 एस० सी० आर० 461.

102. प्रजातन्त्र की यह कठिनाई जो **सरदारी लाल वाले मामले**[1] के निर्णय के कारण उत्पन्न हुई, जो राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और दर्शन के गहन अध्ययन द्वारा ही सुलझायी जा सकती है। इसके साथ ही संविधान निर्माता जिन नमूनों से प्रभावित हुए, उन्हें जानना भी जरूरी है। हमारी सांविधानिक संरचना और उसकी गतिशील शक्तियों का मूल आधार, उसे जीवन देने वाली भावना और न्यायिक विचार क्या हैं ?

103. हमारी सांविधानिक विधि भागतः विभिन्न स्रोतों से ली गई है, जैसा कि भारतीय राजनीति-इतिहास की तुलनात्मक सांविधानिक पद्धतियों का कोई भी विद्यार्थी सहमत होगा। किन्तु वह प्रधान रूप से वैस्टमिनिस्टर नमूने का भारत-आंग्ल स्वरूप है जिसमें संघीयवत् उपान्तरण ऐतिहासिक फेरफार और भूगोलिक, राजनैतिक परिवर्तन और देशी परम्पराएं हैं जो मूलतः ब्रिटिश संसदीय पद्धति और गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 का मिश्रण हैं और अमरीका की पद्धति से कुछ बातों में मिलता हुआ है।

104. यदि हम सरिता की कल्पना को अपनाएं, तो टेम्स न कि उसके आसपास का भाग यमुना के प्रवाह को जीवन देता है। इस विश्लेषण में हम इस न्यायालय के पूर्वोदाहरणों की मदद लेंगे जो संविधान सभा की कार्यवाहियों से बल प्राप्त करते हैं और जिन्हें अन्तर्वलित अंगों के, करीब रजत जयन्ती कालावधि तक वास्तविक कार्यकरण से, शक्ति प्राप्त हुई है।

105. ऐतिहासिक रूप से भारतीय सांविधानिक आकांक्षाएं ब्रिटिश पद्धति के अनुरूप थीं। ग्रेनविल आस्टिन ने अपनी पुस्तक में इस बात के समर्थन में मोती लाल नेहरू रिपोर्ट, तेज बहादुर सप्रू रिपोर्ट, और के० एम० मुन्शी के प्रारूप के प्रति निर्देश किया है। संविधान सभा के डिबेट्स (वाद-विवाद) की विभिन्न जिल्दों के कई पृष्ठ न्यायालय में पढ़े गए। लम्बे-चौड़े निर्देश का सार ग्रेनविल आस्टिन ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

> "बीसवीं शताब्दी के मध्य में तेजी से गतिशील संसार में नया भारत रातों-रात बनाया जाना था। इस कार्य के लिए नेतृत्व का उपबन्ध किस प्रकार किया जाए, किस प्रकार की कार्यपालिका स्थायी, मजबूत, प्रभावशाली, फुर्तीली और फिर भी प्रजातान्त्रिक हो सकती है। सभा ने इंग्लैंड की कैबिनेट पद्धति के थोड़े-से उपान्तरित रूप को अपनाया। भारत में एक राष्ट्रपति का उपबन्ध किया गया जो अप्रत्यक्ष रूप से पांच वर्ष की अवधि के लिए चुना जाना था। वह इंग्लैंड के सम्राट की तरह राज्य का सांविधानिक प्रमुख होगा। जैसा कि इंग्लैंड में है, एक मन्त्रि परिषद् भी

1 (1971) 3 एस० सी० आर० 461.

होगी जिसका प्रमुख प्रधान मन्त्री होगा और मन्त्रि परिषद् संसद् के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार होगी। मन्त्रिपरिषद् का काम राज्य के प्रमुख को सहायता और मन्त्रणा देना होगा। राष्ट्रपति कार्यपालिका का नाममात्र का प्रमुख होगा और प्रधान मन्त्री वास्तविक प्रमुख होगा।"

106. नेहरू, पटेल, मुन्शी, सर बी० एन० राव, सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर और सब से अधिक डाक्टर अम्बेडकर ने जो प्रारूपण समिति के सभापति थे, बहुत कम अन्तर से उन बातों पर एकमत से विचार व्यक्त किए जो हमारे महत्वपूर्ण प्रयोजन के लिए अतात्त्विक हैं। ऐसे अध्ययन से जो कुछ ज्ञात होता है, वह यह है कि न्यूनतम परिवर्तनों सहित संघवत् संसदीय पद्धति स्वीकार की गई थी और राष्ट्रपति के प्रकार की कार्यपालिका सारतः नामंजूर की गई थी। राजनीतिज्ञता और विद्वता और जो कुछ फायदाप्रद था उसे लेने के लिए सहमत होने के पक्के मेल के परिणामस्वरूप एक सांविधानिक कालेज बनाया गया जहां भारतीय अनुभव से समर्थित वैस्टमिनिस्टर प्रतीक आदरपूर्वक सुरक्षित रखे गए और मन्त्रिपरिषद् की जिम्मेदारी की पद्धति संघीय गणतन्त्रवाद के ढांचे में निर्मित की गई। मदद लिए जाने वाले संविधानों की सूची बहुत लम्बी थी, किंतु हमारे संविधान निर्माताओं की सूझबूझ से वह कामनवैल्थ देशों के संविधानों तक ही सीमित रखी गई। ब्रिटेन से जो कैबिनेट सरकार निर्यात की गई थी, वह भी पिछले अनुभव द्वारा स्वदेशी बना दी गई। सक्रियतावादियों के भाषणों से दिए गए बेतरतीब अंशों से भी कैबिनेट पद्धति पर बेमिसाल सहमति ज्ञात होती है।

107. राष्ट्रपति के निर्वाचन से सम्बन्धित खण्ड पेश करते समय प्रधान मन्त्री नेहरू ने स्थिति राजनैतिक स्पष्टता से समझाई है—

"आरम्भ में ही हमें जो एक बात तय करनी है वह यह है कि सरकारी ढांचे का प्रकार क्या हो? क्या वह ऐसी पद्धति हो जिसमें मंत्रियों की जिम्मेदारी होती है या वह राष्ट्रपतीय पद्धति हो जैसी कि संयुक्त राज्य अमरीका में है। बहुत से सदस्य सम्भवतः आरम्भ में इस अप्रत्यक्ष निर्वाचन पर आक्षेप करें और वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन को पसंद करें। हमने इस बात के सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार किया है और हम इस पक्के निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ऐसा करना वांछनीय नहीं होगा। प्रथम बात यह है कि हम सरकार के मंत्रिपरिषद् वाले स्वरूप पर जोर देना चाहते हैं, यह कि शक्ति वास्तव में मन्त्रालय में और विधानमण्डल में

होती है न कि राष्ट्रपति में । साथ ही हम राष्ट्रपति को फ्रांस के राष्ट्रपति के समान केवल नाममात्र का राष्ट्रपति बनाना भी नहीं चाहते । हमने उसे कोई वास्तविक शक्ति नहीं दी है किन्तु हमने उसकी स्थिति बड़े प्राधिकार और गौरव की बनाई है । संविधान के इस प्रारूप से आप यह जानेंगे कि वे अमरीका के राष्ट्रपति के समान ही रक्षा बलों के प्रधान सेनापति (कमाण्डर-इन-चीफ) भी हैं । अतः अब यदि हम वयस्क मताधिकार से निर्वाचन करते हैं और उन्हें कोई वास्तविक शक्तियां नहीं देते हैं तो यह एक अजीब बात होगी और इसमें असाधारण रूप से समय और शक्ति और धन व्यय होगा और उसका पर्याप्त परिणाम नहीं होगा X X X"

108. मन्त्रियों के लिए निश्चित पदावधि के बारे में उनका विरोध भी इसी आधार पर ज्ञात होता है—

"इससे एक बहुत महत्त्वपूर्ण विवाद्यक उद्भूत होता है कि आप अपने संविधान को क्या स्वरूप देने जा रहे हैं । मन्त्रि परिषदीय संसदीय प्रकार या अमरीका में प्रचलित प्रकार । अभी तक हमने मन्त्रिपरिषद् के अर्थ में संविधान बनाए जाने की दिशा में कार्य किया है और X X X X अब हम उससे विमुख नहीं हो सकते ।"

109. श्री के० एम० मुन्शी ने संसदीय पद्धति अपनाए जाने के लिए ये ऐतिहासिक कारण बताए—

"हमें एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य नहीं भूलना चाहिए कि पिछले सौ वर्षों से भारतीय लोक-जीवन इंग्लैंड की सांविधानिक विधि की परम्पराओं पर काफी हद तक निर्भर रहा है । हम में से अधिकांश और हमारे पहले की कई पीढ़ियों के दौरान भारत में लोक नेताओं ने इंग्लैंड के नमूने को सर्वोत्तम माना । पिछले तीस या चालीस वर्षों से इस देश का शासन करने में जिम्मेदारी का कुछ तत्व आरम्भ किया गया । हमारी सांविधानिक परम्पराएं संसदीय हो गई हैं और अब हमारे सभी प्रान्त कम या अधिक ब्रिटिश आदर्श के आधार पर ही कार्य कर रहे हैं । तथ्य के तौर पर आज भारत की डोमिनियन सरकार पूर्ण रूप से संसदीय सरकार के तौर पर कार्य कर रही है ।"

110. दूसरे प्रक्रम में अमरीका के राष्ट्रपति पद को अपनाए जाने के प्रोफेसर साह के प्रस्ताव का विरोध करते हुए तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए उन्होंने इसी बात पर जोर दिया—

" X X X हम यह जानते हैं कि अमरीका का संविधान उतने अच्छे ढंग से कार्य नहीं कर रहा है जितने अच्छे ढंग से ब्रिटिश संविधान कार्य कर रहा है ! इसका सीधा सा कारण यह है कि देश में प्रमुख कार्यपालिका विधानमण्डल से अलग है । सब से अधिक शक्तिशाली सरकार और सब से अधिक नमनशील कार्यपालिका इंग्लैंड में है और यह इस कारण है कि कार्यपालिका शक्ति कैबिनेट में निहित है जिसे निचले सदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त है जिसे संविधान के अधीन वित्तीय शक्तियां प्राप्त होती हैं । परिणामस्वरूप विधानमण्डल में बहुमत का शासन होता है क्योंकि वह कैबिनेट के अपने नेताओं का समर्थन करता है । कैबिनेट राज्य के प्रमुख अर्थात् सम्राट या राष्ट्रपति को सलाह देती है । सम्राट या राष्ट्रपति इस प्रकार दल के ऊपर रखा गया है । वास्तव में वह संविधान का निष्पक्ष गरिमा चिह्न बनाया गया है । आज इंग्लैण्ड में कैबिनेट की शक्ति संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली शक्तियों से किसी भी प्रकार कम नहीं है । इस तथ्य के कारण कि प्रधान मन्त्री और पूरी कैबिनेट ही विधानमण्डल के सदस्य होते हैं, कार्यपालिका और विधायिका की शक्ति के बीच परस्पर विरोध न्यूनतम हो गया है । वास्तव में कोई विरोध है ही नहीं क्योंकि प्रत्येक क्षण कैबिनेट तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक संसद् में उसे बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है ।"

111. बी० एन० राव के प्रारम्भिक टिप्पण में यह सुझाया गया कि राष्ट्रपति को कुछ वैवेकिक शक्तियां दी जाएं । किन्तु संघीय संविधान समिति ने जुलाई, 1947 के शुरू में ही बिना किसी शर्त के यह विनिश्चय किया कि सरकार का स्वरूप संसदीय होना चाहिए जिसमें राष्ट्रपति में व्यक्तिशः कोई विशेष शक्तियां निहित नहीं होंगी । किन्तु वह संसद् के निचले सदन को विघटित करने की शक्ति को सम्मिलित करते हुए अपने सभी कृत्यों का केवल अपने मन्त्रियों की सलाह के अनुसार ही प्रयोग करेगा ।

112. अनुदेशों के लिखत के लिए पूर्ववर्ती प्रस्ताव को समाप्त करने की बाबत इस संदर्भ में कुछ लेखकों ने वर्णित किया है । किन्तु उस प्रस्ताव को छोड़ देने का कारण अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने सभा में इस प्रकार वर्णित किया था—

"संविधान में यह उपबन्ध किया गया था कि मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगी । यदि मन्त्रिपरिषद् द्वारा उस

उत्तरदायित्व के निर्वहन के मार्ग में राष्ट्रपति आएगा तो वह संविधान का उल्लंघन करने का दोषी होगा और वह महाभियोग के लिए भी दायी होगा। अतः कहने का वह एक शिष्ट तरीका मात्र था कि राष्ट्रपति का मार्गदर्शन अपने मन्त्रियों की सलाह द्वारा होगा। मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगी और वह बजट, सभी विधान और देश के प्रशासन से सम्बन्धित प्रत्येक बात की बाबत सदन के प्रति उत्तरदायी होगी। अतः संविधान के किसी अनुच्छेद में विस्तार से इस बात का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि उत्तरदायी सरकार के कृत्य और लक्षण क्या होंगे।"

दूसरे अवसर पर उन्होंने यह बात दोहराई—

" X X X X संघीय संविधान समिति ने और इस सभा ने वह पद्धति अपनाई जो सरकार की कैबिनेट पद्धति कही जा सकती है। वर्तमान दशा में हमारा प्रजातन्त्र शैशव अवस्था में है और वह सतत मतभेद, बैर या विरोध का खतरा या विधानमण्डल और कार्यपालिका के बीच विरोध की आशंका का खतरा मोल नहीं ले सकता।"

113. तारीख 4 नवम्बर, 1948 को संविधान का प्रारूप पुरःस्थापित करते समय डाक्टर अम्बेडकर का महत्त्वपूर्ण कथन उद्बोधक है। उन्होंने कहा—

"संविधान के प्रारूप में भारत संघ का प्रधान ऐसा कृत्यकारी होगा जो संघ का राष्ट्रपति कहलाएगा। इस कृत्यकारी की पदवी से संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की याद आ जाती है। किन्तु नाम की समानता के अलावा अमरीका और संविधान के इस प्रारूप के अधीन प्रस्थापित सरकार के प्रकार में कोई समानता नहीं है। संविधान के प्रारूप के अधीन राष्ट्रपति की स्थिति वैसी ही है जैसी कि इंग्लैण्ड के संविधान के अधीन राजा की है। वह राज्य का प्रधान है किन्तु कार्यपालिका का प्रधान नहीं है। वह राष्ट्र का प्रतीक है। प्रशासन में उसकी स्थिति समारोह के प्रधान के समान है जिसके द्वारा राष्ट्र के विनिश्चय जनता तक पहुंचाए जाते हैं। अमरीका के संविधान के अधीन राष्ट्रपति के अधीन विभिन्न विभागों के भार-साधक सचिव होते हैं। इसी प्रकार भारत संघ के राष्ट्रपति के अधीन प्रशासन के विभिन्न विभागों के प्रभारी मन्त्री होंगे। किन्तु यहां भी दोनों के बीच एक मूलभूत अन्तर है संयुक्त राज्य का

1974(8) eILR(PAT) SC 1

राष्ट्रपति अपने सचिवों में से किसी के द्वारा दी गई सलाह को मानने के लिए आबद्ध नहीं है। भारत संघ का राष्ट्रपति साधारण तौर पर अपने मन्त्रियों की सलाह द्वारा आबद्ध होगा। वह उनकी सलाह के विपरीत कुछ नहीं कर सकता और न वह उनकी सलाह के बिना ही कुछ कर सकता है। संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति किसी भी समय किसी भी सचिव को पदच्युत कर सकता है। भारत संघ के राष्ट्रपति को तब तक ऐसा करने की कोई शक्ति नहीं है जब तक कि उसके मन्त्रियों का संसद् में बहुमत बना रहता है।

आप ऐसी पद्धति अपना सकते हैं, जिससे आपको अधिक स्थायित्व मिल सके किन्तु उत्तरदायित्व कम होगा या आप ऐसी पद्धति अपना सकते हैं जिसमें उत्तरदायित्व अधिक हो किन्तु स्थायित्व कम हो। अमरीका और स्विटज़रलैण्ड की पद्धतियों में स्थायित्व अधिक है किन्तु उत्तरदायित्व कम है। इसके विपरीत ब्रिटिश पद्धति में उत्तरदायित्व अधिक है किन्तु स्थायित्व कम है।

...इंग्लैण्ड में जहां संसदीय पद्धति प्रचलित है, कार्यपालिका के उत्तरदायित्व का निर्धारण दैनिक और नियतकालिक दोनों है। दैनिक निर्धारण प्रश्नों, संकल्पों, अविश्वास प्रस्तावों, स्थगन प्रस्तावों और अभिभाषणों पर वाद-विवादों के जरिए संसद् सदस्यों द्वारा किया जाता है। नियतकालिक निर्धारण निर्वाचकों द्वारा निर्वाचन के समय किया जाता है जो प्रति पांच वर्ष में या पहले भी हो सकता है। यह अनुभव किया गया है कि उत्तरदायित्व का दैनिक निर्धारण जो अमरीका की पद्धति के अधीन उपलभ्य नहीं है, भारत जैसे देश के लिए नियतकालिक निर्धारण की अपेक्षा बहुत अधिक प्रभावशील और बहुत अधिक जरूरी है। संविधान के प्रारूप में कार्यपालिका की संसदीय पद्धति की सिफारिश करने में संविधान के प्रारूप में अधिक स्थायित्व से अधिक उत्तरदायित्व को अधिमान दिया गया है।"

उन्होंने श्री कामथ को चुप करा दिया जिन्होंने सभा में यह पूछा था कि क्या मंत्री द्वारा दी गई सलाह को मानने से इन्कार करना संविधान के उल्लंघन की कोटि का होगा। उन्होंने कहा : "इसके बारे में लेशमात्र भी संदेह नहीं है।" आस्टिन ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है : "अय्यर श्री अम्बेडकर से इस बाबत सहमत थे कि जो राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों की सलाह नहीं सुनता, वह वास्तव में संसद् की इच्छा को निष्फल करेगा जिसके लिए उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है।

114. सरदार पटेल ने दोनों महत्त्वपूर्ण समितियों के संयुक्त अधिवेशन में इन शब्दों में इस विवाद्य को तय कर दिया—

"इन दोनों समितियों (संघ संविधान समिति और प्रान्तीय आदर्श संविधान की बाबत समिति) की बैठक हुई और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि संविधान की संसदीय पद्धति को अपनाना इस देश की परिस्थितियों में उपयुक्त होगा, इंग्लैण्ड के प्रकार का संविधान जिससे हम परिचित हैं।"

115. अन्तिम प्रक्रम में संविधान पर साधारण विचार-विमर्श के दौरान टी० टी० कृष्णमाचारी ने कहा—

"यह वर्णित किया गया है कि इस संविधान का मुख्य दोष यह है कि हमने कहीं भी यह वर्णित नहीं किया है कि राष्ट्रपति सांविधानिक प्रधान है और इसलिए राष्ट्रपति की शक्ति का भविष्य संदेहपूर्ण है…… यह ऐसी बात है जिसकी प्रारूपण समिति ने कुछ हद तक परीक्षा की है। उत्तरदायी सरकार में राष्ट्रपति की स्थिति वैसी ही नहीं होती जैसी कि अमरीका जैसी प्रतिनिधिक सरकार में राष्ट्रपति की हैसियत होती है और यह ऐसी गलती है जो सदन के बहुत-से व्यक्ति करते रहे हैं जब उन्होंने यह कहा कि राष्ट्रपति निरंकुश शासक हो जाएगा और ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ने भी यह अनुभव नहीं किया कि राष्ट्रपति को प्रधान मन्त्री की सलाह पर कार्य करना होता है……जहां तक राष्ट्रपति का कैबिनेट से सम्बन्ध है, मैं यह कहूंगा कि हमने उत्तरदायी सरकार की पद्धति की पूर्ण रूप से नकल की है। ऐसी सरकार वर्तमान में इंग्लैण्ड में कार्य कर रही है। हमने उससे कोई विचलन नहीं किया है और हमने जो विचलन किए हैं वे केवल ऐसे ही हैं जो जरूरी हैं क्योंकि हमारी संविधान संरचना संघीय (फेडरल) है।"

116. उसी विचार-विमर्श में भाग लेते हुए राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—

"हमें निर्वाचित विधानमण्डल से निर्वाचित राष्ट्रपति की स्थिति में तालमेल बैठाना होगा और ऐसा करने में हमने राष्ट्रपति के लिए अधिक या कम इंग्लैण्ड के राजा की स्थिति अपनाई है। …उसकी स्थिति सांविधानिक राष्ट्रपति जैसी ही है। अब हम मन्त्रियों की बाबत विचार करते हैं। निस्संदेह वे विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी हैं

1974(8) eILR(PAT) SC 1

ग्रौर वे उसकी सलाह के अनुसार कार्य करते हैं। यद्यपि जहां तक मुझे ज्ञान है, स्वतः संविधान में ऐसे कोई विशिष्ट उपवन्ध नहीं हैं जो राष्ट्रपति को अपने मन्त्रियों की सलाह मानने के लिए आवद्ध करते हों। किन्तु यह आशा की जाती है कि वह कनवेन्शन, जिसके अधीन इंग्लैण्ड में राजा हमेशा अपने मन्त्रियों की सलाह के अनुसार कार्य करता है, इस देश में भी स्थापित हो जाएगी और राष्ट्रपति संविधान में लिखित शब्दों की बजाय इस बहुत स्वस्थ कनवेन्शन के परिणामस्वरूप सभी मामलों में सांविधानिक राष्ट्रपति बन जाएगा।"

117. संविधान सभा के अध्यक्ष द्वारा ये प्रभावशाली शब्द उस महत्त्वपूर्ण अवसर पर कहे गए थे, जब संविधान को अन्तिम रूप से अपनाने के लिए प्रस्ताव सदस्यों के मत के लिए रखा गया था।

118. सांविधानिक विवाद्यक का सब से शक्तिशाली नाटकीय रूप संविधान सभा में हुए विवाद की वह घटना है जब डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद और डाक्टर अम्बेडकर के बीच बहुत तीखे ढंग से निम्नलिखित बातें कही गईं। हम उन प्रभावशाली पृष्ठों को नीचे उद्धृत करते हैं—

आदरणीय अध्यक्ष : एक दूसरा संशोधन है जो सरदार हुकुम सिंह द्वारा रखा गया है जिसमें वह कहते हैं कि राष्ट्रपति अपनी मन्त्रिपरिषद् से परामर्श करने के पश्चात् अध्यादेश प्रख्यापित करेगा।

आदरणीय डाक्टर बी० आर० अम्बेडकर : इस बाबत मुझे स्मरण दिलाने के लिए मैं आप का बहुत आभारी हूं। वात यह है कि वह संशोधन अनावश्यक है क्योंकि राष्ट्रपति मन्त्रियों की सलाह के बिना कार्य नहीं कर सकता और कार्य नहीं करेगा।

आदरणीय अध्यक्ष : संविधान के प्रारूप में ऐसा उपवन्ध नहीं है जो राष्ट्रपति को मन्त्रियों की सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध करता है।

डॉक्टर अम्बेडकर : मुझे पक्के तौर पर ज्ञात है कि ऐसा उपवन्ध है और उपवन्ध यह है कि राष्ट्रपति को अपने कृत्यों को संपादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी।

आदरणीय अध्यक्ष: चूंकि हमारा संविधान एक लिखित संविधान है अतः हर इस बात का कहीं स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहिए।

डा० अम्बेडकर : यद्यपि मैं यह बात इसी वक्त नहीं बतला सकता किन्तु

इस बारे में मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसा उपबन्ध है। मेरा विचार है कि ऐसा उपबन्ध है कि राष्ट्रपति मन्त्रियों की सलाह मानने के लिए बाध्य होगा। वास्तव में वह मन्त्रियों की सलाह के बिना कार्य नहीं कर सकता।

कुछ आदरणीय सदस्य : अनुच्छेद 61(1).

आदरणीय अध्यक्ष : उसमें केवल मन्त्रियों का कर्त्तव्य ही उल्लिखित है किन्तु उसमें यह उल्लेख नहीं है कि राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य है कि वह मन्त्रियों द्वारा दी गई सलाह के अनुसार कार्य करे। उसमें यह अधिकथित नहीं है कि राष्ट्रपति सलाह मानने के लिए आबद्ध है। क्या संविधान में कोई अन्य उपबन्ध है? हम उस पर महाभियोग लगाने में भी समर्थ नहीं होंगे क्योंकि यदि संविधान में कोई उपबन्ध नहीं रहता है तो वह संविधान का उल्लंघन करते हुए कार्य नहीं करेगा।

डॉ० अम्बेडकर : क्या मैं आपका ध्यान अनुच्छेद 61 की ओर आकर्षित कर सकता हूं जिसमें राष्ट्रपति के कृत्यों के सम्पादन का वर्णन है? वह अपने किसी कृत्य का सम्पादन तब तक नहीं कर सकते जब तक कि उन्हें अपने कृत्यों के सम्पादन में सलाह प्राप्त न हो जाए। उसमें केवल 'सहायता करना और मन्त्रणा देना' ही नहीं है। 'अपने कृत्यों का सम्पादन करने में' बहुत महत्त्वपूर्ण शब्द हैं।

आदरणीय अध्यक्ष : मुझे सन्देह है कि ये शब्द राष्ट्रपति को आबद्ध कर सकेंगे। उसमें केवल यह अधिकथित है कि राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान प्रधानमन्त्री होगा। उसमें यह नहीं कहा गया है कि राष्ट्रपति मन्त्रणा स्वीकार करने के लिए आबद्ध होगा।

डॉ० अम्बेडकर : यदि वह अस्तित्वशील मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा स्वीकार नहीं करता है तो उसे मन्त्रियों के किसी दूसरे निकाय से मन्त्रणा प्राप्त करनी होगी। वह मन्त्रियों के बिना स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में कभी भी समर्थ नहीं होगा।

आदरणीय अध्यक्ष : क्या कहीं इस बाबत उपबंध करने में कि राष्ट्रपति मन्त्रियों की मन्त्रणा से आबद्ध होगा, कोई वास्तविक कठिनाई है ?

डॉ० अम्बेडकर: हम वैसा कर रहे हैं। यदि मुझे कहने की इजाजत हो तो अनुदेशों के लिखत में ऐसा उपबन्ध है।

आदरणीय अध्यक्ष : मैंने उस पर भी विचार कर लिया है।

डॉ० अम्बेडकर : पैराग्राफ 3 इस प्रकार है—

"संघ की कार्यपालिका शक्ति के व्याप्ति-क्षेत्र के भीतर की सभी बातों में राष्ट्रपति अपने को प्रदत्त शक्तियों के सम्पादन में अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा से मार्गदर्शन प्राप्त करेगा।" हम उसमें कुछ संशोधन करना प्रस्तावित करते हैं :—

आदरणीय अध्यक्ष : क्या आप उसमें परिवर्तन करना चाहते हैं ? जैसा वह है उसमें अधिकथित है कि राष्ट्रपति संघ की कार्यपालिका शक्ति के सम्पादन में न कि उसकी विधायी शक्ति के सम्पादन में अपने मन्त्रियों से मार्गदर्शन प्राप्त करेगा।

डॉ० अम्बेडकर : अनुच्छेद 61 में लगभग विभिन्न अन्य संविधानों का शब्दशः अनुसरण किया गया है और राष्ट्रपतियों ने हमेशा यह समझा है कि उस भाषा का अर्थ है कि उन्हें मन्त्रणा स्वीकार करनी ही चाहिए। यदि कोई कठिनाई होगी तो निश्चय ही उपयुक्त संशोधन द्वारा वह दूर कर दी जाएगी।

अम्बेडकर का जो दृष्टिकोण असंदिग्धतया स्वीकार किया गया वह यह था—

"मन्त्रियों के समर्थन से देश पर शासन करने का काम प्रधानमन्त्री का है और समय-समय पर राष्ट्रपति को इस बात की इजाजत दी जा सकती है कि वह मन्त्रिपरिषद् को सहायता और मन्त्रणा दे। अतः हमें सार को देखना चाहिए जो कनवेन्शन्स का परिणाम है, न कि केवल शब्दावली को।"

119. यदि संविधान निर्माताओं की अन्तरात्मा की आवाज मार्गदर्शक मानी जाए तो यह बात युक्तियुक्त सन्देह से परे साबित हो गई है कि राष्ट्रपति और सुतराम राज्यपाल, कुछ अपवादों और आंशिक आरक्षणों के अलावा कैबिनेट स्वरूप की सरकार में सांविधानिक प्रधान की प्रास्थिति से न तो अधिक और न कम प्रास्थिति रखते हैं।

120. तथापि हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि ऊंचे स्तर के विद्वानों ने इसके विपरीत मत व्यक्त किया है। उदाहरण के लिए लेखक श्री के० एम० मुन्शी ने संविधान निर्माता के तौर पर अपना जो पक्ष रखा था उसके वे विपरीत हो गए। 'दि प्रेसीडेण्ट अण्डर दि इण्डियन कान्स्टिट्यूशन में उन्होंने लिखा है कि राष्ट्रपति राज्य का एक स्वतन्त्र अंश है जो सम्पूर्ण संघ का प्रतिनिधित्व करता है और शक्तियों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से करता है। वे हमारे संविधान को सामासिक संविधान के तौर पर पढ़ते हैं जिसमें कार्यपालिका का संसदीय रूप एवं शक्ति और प्राधिकारयुक्त राष्ट्रपति दोनों ही सम्मिलित किए गए हैं, गलत नहीं है।

1974(8) eILR(PAT) SC 1

'संसदीय सरकार को संसदीय अराजकता बन जाने से रोकने के लिए' वास्तव में उन्होंने इंग्लैण्ड की कनवेन्शन आयात किए जाने को 'संविधान के संशोधन की कोटि का माना है।' राष्ट्रपति का निर्वाचन, उनके द्वारा ली गई पद की शपथ, कैबिनेट की तानाशाही रोकने के लिए उनकी विशिष्टीय शक्तियों और उनकी बाध्यताओं को इस आदरणीय राजनीतिज्ञ ने क्रमबद्ध किया है। उनके तर्क का चरम बिन्दु यह है कि अनुच्छेद 74 में सहायता और मन्त्रणा में यह विवक्षित नहीं है कि सभी मामलों में मन्त्रणा स्वीकार की ही जानी चाहिए। दूसरे वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ श्री के० सन्थानम् का भी यही मत है। यह भी कहा गया है कि राष्ट्रपति को शक्तियों से विरहित (वंचित) करने की बाबत प्रश्न पर डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद भी पुनर्विचार करना चाहते थे (पृष्ठ 141, दि कांस्टिट्यूशन आफ इण्डिया, हाऊ इट हैज बीन फ्रेम्ड—प्रताप कुमार घोष)। यह निर्वचनात्मक विमुखता भ्रम भंग हो जाने के परिणामस्वरूप हो सकती है, क्योंकि श्री मुन्शी ने स्पष्ट रूप से कहा है—

> "संविधान के विरचित किए जाने के दौरान हम सभी की यह कल्पना थी कि हम संसदीय लोकतन्त्र और ब्रिटिश कैबिनेट पद्धति को सफल बनाएंगे। किन्तु यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि यह प्रयोग असफल हो गया है। यदि मुझे फिर से अपनी पसन्द करनी हो तो मैं सरकार की राष्ट्रपतिमूलक पद्धति के पक्ष में मत दूंगा जिससे जब कभी राजनीतिज्ञ देश का अकल्याण करें तब राज्य का कम-से-कम एक मजबूत अंग हो जो उसे संकट से उबारने में समर्थ हो।"

121. विधिक निर्वचन के क्षेत्र में क्या अभिलाषा विचार की जननी हो सकती है?

122. इसी प्रकार पी० बी० मुखर्जी और न्यायाधिपति इस्माइल ने यह तर्क दिया है कि राष्ट्रपति ब्रिटिश क्राउन से अधिक है। वह राज्य का शासन करता है और उसकी मौजूदगी दोपहर के समय पूर्ण चन्द्र के समान धुंधली नहीं है किन्तु वह सांविधानिक आकार की सम्राज्ञी के समान है। अब हम संक्षेप में उन दलीलों को वर्णित करेंगे जो इस मत की पुष्टि करने के लिए दी गई हैं कि यद्यपि नीति की सभी बातों पर प्रारम्भिक कार्यवाही करना कैबिनेट और प्रधान मन्त्री का काम होगा किन्तु अन्तिम विनिश्चय ऐसा होगा कि राष्ट्रपति अपनी अनुमति आदर और आत्मसम्मान सहित दे सके (ऊपर उद्धृत मामला संख्या 1 के पृष्ठ 98 से उद्धृत)। इस बात का शोक मनाने के पश्चात् कि जब स्पष्ट

अवसरवादिता सर्वोपरि है, जब पद और शक्ति के लिए सिद्धान्तों को ताक पर रख दिया जाता है और जब अस्थायी लाभ प्राप्त करने के लिए विचारधारा को त्याग दिया जाता है और आकर्षक नारों के आधार पर मत प्राप्त करने के लिए सिद्धांतों को छोड़ दिया जाता है, जब स्वहित और छोटी-छोटी बातें राष्ट्रीय हित के ऊपर रखी जाती हैं और जब स्वस्थ और सन्तुष्ट समाज को जिसे जीवन की आधारभूत आवश्कताएं सुनिश्चित होनी चाहिएं, अस्तित्व में लाने के स्थायी और सर्वोपरि उद्देश्य के स्थान पर तत्काल लाभ का उद्देश्य हावी हो जाती है, तब किसी भी संविधान के चाहे वह कितनी भी होशियारी से बनाया गया हो, बिगड़ने और विनष्ट होने के विरुद्ध कोई गारण्टी नहीं हो सकती। विद्वान् न्यायविद्—न्यायाधीश ने आगे कहा—

> "इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए मेरा मत है कि संविधान द्वारा राष्ट्रपति या राज्यपालों पर ऐसी कोई बाध्यता अधिरोपित नहीं की गई है कि वे सभी बातों में और सभी परिस्थितियों में मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा के अनुसार कार्य करें। संविधान का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करने के लिए उन्हें कुछ वैवेकिक शक्ति भी है जिससे वे भारत के लोगों की सेवा और खुशहाली के लिए कार्य कर सकें और तत्समय सत्ता में रहने वाले किसी विशेष दल द्वारा वांछित अस्थायी फायदों को निष्फल कर सकें।"

123. श्री पी० बी० मुखर्जी ने चिमनलाल सीतलवाड भाषणमाला में अपनी थीसिस इस प्रकार प्रतिपादित की—

> "ये सांविधानिक तत्व और उपबंध सांविधानिक और विधिक सार से रहित केवल पवित्र अभिलाषाएं मात्र ही नहीं हैं, किन्तु ये भारतीय संविधान के विशिष्ट सिद्धान्त हैं। इनकी कारगरता इस तथ्य में है कि राष्ट्रपति कैबिनेट तानाशाही पर सांविधानिक और प्रभावी नियन्त्रण है जो प्रभावकारी विरोधी दल के बिना एक राजनीतिक दल के सब से अधिक शक्तिशाली होने के कारण हो सकती है।"

X X X X

> "इस विश्लेषण के आधार पर यह निवेदन किया जाता है कि भारतीय कार्यपालिका संविधान द्वारा मजबूत और प्रभावशील होने के लिए प्राधिकृत है। किन्तु संविधान के उपबंधों को गलत रूप से काम में लाने और उनका गलत निर्वचन करने से उसका स्तर अप्रभावशील होने तक कम हो गया है जिससे जब तक कि उसे ठीक न किया जाए, न केवल

सांविधानिक समस्याएं पैदा हो जाएंगी किन्तु संविधानेतर समस्याएं भी पैदा हो जाएंगी जिससे देश के लिए भारी संकट पैदा हो सकता है।"

इसका यह अभिप्राय है कि वास्तव में राष्ट्रपति और राज्यपाल शासन करते हैं और मन्त्रिपरिषद् उनके नाम पर रहती है और वह मन्त्रणा माने या न माने की भावना से मन्त्रणा देती रहती है। किन्तु गणराज्य पद्धति वाले संविधान में व्यक्ति पूजा सन्निहित करना और कैबिनेट सरकार को पार्षदों के समूह में प्रभावहीन कर देना कठिन और खतरनाक है। क्या एक व्यक्ति के लिए जिसमें सर्व प्राधिकार समाहित हो और जो किसी के प्रति उत्तरदायी न हो, या एक सामूहिक निकाय के लिए जिसका हमेशा और विभिन्न रूप से विरोध किया जाता है और जिसपर निर्वाचित प्रतिनिधियों की संसद् का विश्वास प्राप्त करने की बाध्यता है, शक्ति का दुरुपयोग करना सरल है। क्या ऐसा करना छोटी-छोटी बातों की चिन्ता करना और महत्त्वपूर्ण बात की उपेक्षा कर देना नहीं है। जो लोकप्रिय सरकार की इस कारण आलोचना करते हैं कि वह दल की अव्यवस्था के कारण ऐसी सरकार गलत रास्ते पर ले जा रही है, संविधान में परिवर्तन के लिए दलील दे सकते हैं। किन्तु वे संगठनात्मक विधि के जैसी वह है, चाहे वह विद्वता से या मूर्खता से अधिनियमित की गई हो, अर्थ को त्याग नहीं सकते। संगठनात्मक विधि वैस्टमिनिस्टर आदर्श के आधार पर सजगतापूर्वक अधिनियमित की गई थी। न ही सांविधानिक अर्थान्वयन को आशय जानने के स्वाभाविक कार्य से विशिष्ट वर्ग के भाव के अनुसार कम किया जा सकता है और उसका स्वाभाविक स्वरूप कम किया जा सकता है। इससे हमें पूर्ण स्वराज्य के लिए भारतीय आकांक्षा के विरुद्ध साम्राज्यवादी दलील की याद आ जाती है। इस विषय पर श्री इस्माइल द्वारा उद्धृत किया गया अंश इस प्रकार है—

"निश्चय ही इस सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि इंग्लैण्ड और भारत के बीच एकरूपता या समानता है। भारत में बहुत अधिक निरक्षरता और अज्ञानता है। ब्रिटिश संसदीय लोकतन्त्र की परम्पराएं प्रभावशाली रूप से स्वीकार किए जाने में या उन्हें और फायदाप्रद रूप से अपनाए जाने में काफी समय लगेगा। भारत के इतिहास की खूबी भला चाहने वाली उन परम्पराओं की रही है जो राजशाही हैं और वे परम्पराएं पूर्ण रूप से लोकप्रिय लोकतान्त्रिक संस्थाओं की नहीं हैं। भारतीय जनता का मिजाज और उसकी भावनाएं ऐसी संस्थाओं के ही अनुकूल हैं और उसे अपने आप को धीरे-धीरे पूर्ण लोकतन्त्रात्मक परम्पराओं के अनुकूल बनाना होगा।"

इस रुख से यह ज्ञात हो जाएगा कि उन्होंने वह निष्कर्ष क्यों निकाला है।

124. यह दलील दी गई कि राष्ट्रपति का कार्य न्यायालय की संवीक्षा से परे है और न्यायालय यह नहीं जान सकता कि क्या वह मन्त्री की मन्त्रणा पर आधारित है। ऐसा होने पर भी इस तथ्य से कि न्यायालय इस बाबत जांच नहीं कर सकते कि क्या सांविधानिक प्रधान को उसके मन्त्रियों द्वारा कोई मन्त्रणा दी गई है और यदि मन्त्रणा दी गई थी तो वह क्या थी, उसका यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति मनमाने ढंग से कार्य कर सकता है। कोई चीज विधिपूर्ण ढंग से की गई इस कारण नहीं कही जाती है क्योंकि न्यायालय उसकी परीक्षा कर सकते हैं किन्तु इस कारण कही जाती है क्योंकि वह विधि द्वारा स्वीकृत होती है। कई तरीके हैं जैसे महाभियोग, संसद् द्वारा परिनिन्दा, जनसमूह द्वारा अभ्यापत्ति, जिसमें सामाजिक अंगों द्वारा विधि अभिज्ञात की गई है। अधिकार केवल न्यायालयों द्वारा ही प्रवृत नहीं किए जाते हैं और उपचार अधिकारों के स्रोत नहीं हैं।

125. राष्ट्रपति द्वारा पद की इस शपथ की बाबत कि वह संविधान की प्रतिरक्षा करेगा, मन्त्रिमण्डल पद्धति के विरोधियों द्वारा दलील दी जाती है। यह ठीक है कि वह संविधान की प्रतिरक्षा करता है किन्तु वह संविधान में अन्तर्विष्ट कैबिनट के उत्तरदायित्व के सारभूत तत्व से इंकार करके संविधान की प्रतिरक्षा नहीं करता है। वास्तव में वह उस प्रकार से संविधान को नष्ट करता है। किन्तु वह संविधान की प्रतिरक्षा 'उत्तरदायी' मन्त्रियों ने जो कुछ विनिश्चय किया है उसे अपना सांविधानिक कृत्य स्वीकार करके करता है। क्या कोई न्यायाधीश अपने पद की शपथ के अनुपालन में सभी आबद्धकर पूर्वोदाहरणों की उपेक्षा कर सकता है और अपनी अन्तर्आत्मा की तदर्थ आवाज के अनुसार विनिश्चय कर सकता है। **त्रिभुवन दास**[1] वाले मामले में इसका नकारात्मक उत्तर दिया है। यदि प्रत्येक कृत्यकारी जो संविधान के अनुसार शपथ लेता है, संविधान का निर्वचन अपने ज्ञान (समझ) के अनुसार करता है तो यह पवित्र दस्तावेज अव्यवस्था और टकराव का स्रोत बन जाएगी और विधि का शासन इसका सब से पहले शिकार होगा। न्यायविद् ऐसी खामी को स्वीकार नहीं कर सकते।

126. सीरवाई और अन्य न्यायविदों का यह मत है कि हमारे संविधान में इंग्लैण्ड की संसदीय कार्यपालिका पद्धति अपनाई गई है, और राष्ट्रपति और राज्यपाल कार्यपालिका के सांविधानिक प्रधान हैं और असली कार्यपालिक शक्ति मन्त्रिपरिषद्[2] में निहित की गई है। अलेग्ज़ेण्ड्रोविज़ ने भी यही बात स्पष्ट की है—

---

[1] (1968) 1 एस० सी० आर० 455, 465.

[2] कांस्टिट्यूशनल लॉ आफ इण्डिया, एच० एम० सीरवाई—1968 संस्करण जिल्द II, पृष्ठ 774.

1974(8) eILR(PAT) SC 1

"कार्यपालिका से सम्बन्धित संविधान के भाग 5 के अध्याय 1 के उपबन्ध प्रथमदृष्टया यह छाप छोड़ते हैं कि भारत का राष्ट्रपति, राज्य का प्रधान, कार्यपालिका का भी असली प्रधान है और मन्त्रिपरिषद् उसे अपने कृत्यों के सम्पादन में केवल सहायता और मन्त्रणा देने के लिए ही है। किन्तु संविधान सभा के डिबेट्स और स्वतन्त्रता के पश्चात् के वर्षों में सांविधानिक पद्धति की जांच करने पर यह बात निस्सन्देह ज्ञात होती है कि स्थिति वास्तव में बिल्कुल विपरीत है और यह कि कन्वेन्शन के द्वारा राष्ट्रपति नाममात्र का पदधारी रह गया है जब कि मन्त्रिपरिषद् असली कार्यपालक है।"

"संसदीय सरकार के निश्चित रूप से अपनाए जाने के अन्तर्गत अनुच्छेद 53(1) का निधान-खण्ड (वेस्टिंग क्लाज़) काफी हद तक अर्थहीन बना रहा क्योंकि असली कार्यपालिक शक्ति मन्त्रिपरिषद् में थी। अत: राष्ट्रपति उन कनवेन्शनों द्वारा, जो साधारणतया संसदीय सरकार के लिए आधारभूत हैं, ऐसी कार्यपालिक शक्ति से निर्निहित बना रहा।"

127. सर बी० एन० राव ने काफी अध्ययन करने के पश्चात् यह साबित किया कि भारत में संसदीय पद्धति की सरकार रही है जिसमें नियत समय पर निर्वाचन, और मन्त्रियों पर संसदीय नियन्त्रण, और प्रधान एक सांविधानिक राजा होता है। यह मनु और कौटिल्ल के जमाने से हमारी सांस्कृतिक विरासत का एक भाग रहा है। इसके विपरीत मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध राष्ट्रपति में शक्तियां निहित किए जाने के लिए जानी-मानी दलीलें दी गई हैं। 1957 में प्रकाशित एक लेख में जिसका शीर्षक 'टू वाट एक्टेन्ड इज दि डिस्चार्ज आफ हिज फंक्शन्स, टू ऐक्ट अपोन दि एडवाइस आफ हिज मिनिस्टर्स' था। लेखक ने सुसंगत अनुच्छेदों पर प्रतीकात्मक राष्ट्रपति पद के सिद्धांत को नामंजूर करने के लिए प्राय: पेश की जाने वाली बातों पर विचार किया, उन्हें हम उद्धृत करते हैं—

"1. भारत के संविधान के निर्मित किए जाने के दौरान यह बात अच्छी तरह से समझ ली गई थी कि राष्ट्रपति को मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा पर कार्य करना चाहिए :

(क) वयस्क मताधिकार पर आधारित प्रत्यक्ष निर्वाचन की बजाय संसद् और सम्पूर्ण भारत के राज्य विधानमण्डलों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन से राष्ट्रपति के निर्वाचन के तरीके से सम्बन्धित उपबन्ध को न्यायोचित ठहराते हुए (अब संविधान का अनुच्छेद 54)— प्रधान मन्त्री ने कहा—

1974(8) eILR(PAT) SC 1

'यदि हमारे राष्ट्रपति वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित किए जाएं और उन्हें कोई असली शक्तियां न दी जाएं तो यह कुछ अजीब बात होगी।'

दूसरे शब्दों में, आशय इस बात पर जोर देने का था कि संविधान द्वारा असली शक्ति मन्त्रिपरिषद् में निहित थी न कि राष्ट्रपति में।

(ख) यह याद किया जाना चाहिए कि भारत के संविधान के प्रारूप में मूलतः राष्ट्रपति के लिए अनुदेशों की एक अनुसूची थी और एक अनुच्छेद था जिसके खण्डों में से एक में उपबन्धित था कि संविधान के अधीन अपने कृत्यों के सम्पादन में उसे साधारण तौर पर इन अनुदेशों से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए। इन अनुदेशों में, अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबन्धित था कि उसे मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा पर ही कार्य करना चाहिए। सुसंगत अनुदेश इस प्रकार था—संघ की कार्यपालिका शक्ति के व्याप्ति-क्षेत्र के अन्तर्गत सभी मामलों में, राष्ट्रपति को प्रदत्त की गई शक्तियों का सम्पादन करने में उन्हें (राष्ट्रपति को) मन्त्रियों की मन्त्रणा से मार्गदर्शन प्राप्त होगा।

अन्ततः अनुदेश एवं खण्ड अनावश्यक समझ कर छोड़ दिए गए। बहुत-से सदस्यों ने इस बाबत आक्षेप किया क्योंकि उनका विचार था कि यह बात बिल्कुल भी स्पष्ट नहीं है कि भारतीय संविधान के अधीन इंग्लैण्ड के संविधान की कनवेन्शनें कहां तक आबद्धकर होंगी। किन्तु विधि मन्त्री ने बहुत जोर देकर कहा कि वे आबद्धकर होंगी X X X X यह कि मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा के अनुसार कार्य करने की कनवेन्शन इंग्लैण्ड और भारत में समान ही होनी चाहिए, इस बाबत किसी को सन्देह नहीं था। एकमात्र सन्देह यह व्यक्त किया गया था कि क्या यह बात भारत के संविधान में पर्याप्त रूप से स्पष्ट है। विधि मन्त्री द्वारा आश्वासन के दिए जाने के पश्चात् निस्संदेह संविधान सभा अनुसूची और खण्ड को छोड़ने के लिए सहमत हो गई। संविधान सभा डिबेट्स, जिल्द 10, 1949 पृष्ठ 268-270.

II. अनुच्छेद 74 से यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण केन्द्रीय क्षेत्र में राष्ट्रपति को मन्त्रणा देने का कृत्य मन्त्रिपरिषद् का है। इस अनुच्छेद के द्वारा उसके विवेक पर कुछ नहीं छोड़ा गया है और न उस क्षेत्र का कोई अपवाद है। तुलना के तौर पर अनुच्छेद 163 देखिए जो राज्यपालों के

लिए तत्समान उपबन्ध है और जिसमें अभिव्यक्त रूप से कतिपय बातों का अपवाद किया गया है जिनमें संविधान द्वारा या उसके अधीन राज्यपाल को अपने विवेक के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा है। राष्ट्रपति की दशा में ऐसा कोई अपवाद नहीं है।

फिर भी अनुच्छेद 75(3) मन्त्रि-परिषद् को लोक सभा के प्रति जिम्मेदार बनाता है। अतः यदि राष्ट्रपति मन्त्रणा के विपरीत कार्य करता है तो या तो मन्त्रिगण इस्तीफा दे देंगे या चूंकि दी गई मन्त्रणा लोक सभा के दृष्टिकोण के अनुसार थी, वे लोक सभा द्वारा पद से बाहर निकाल दिए जाएंगे। इसी कारण से फिर कोई भी सरकार बनाने में समर्थ नहीं होगा और राष्ट्रपति सदन को विघटित करने के लिए विवश होगा। ऐसी स्थिति में साधारण निर्वाचन के बहुत से ब्यौरों को कार्यान्वित करने की तकनीकी कठिनाई के अलावा राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल को पदच्युत करना होगा और साधारण निर्वाचन के आदेश देने में सहयोग प्राप्त करने के लिए एक काम चलाऊ सरकार बनानी होगी। निर्वाचन के परिणाम बहुत गम्भीर हो सकते हैं। यदि निर्वाचक उसी सरकार को सत्ता में वापस ला देते हैं तो राष्ट्रपति पर प्रतिपक्ष का साथ देने का और देश को ऐसे मन्त्रिमण्डल से जिसे संसद् और जनता का समर्थन प्राप्त था, छुटकारा पाने के व्यर्थ प्रयत्न करने में देश को साधारण निर्वाचन के खर्चे और गड़बड़ी में डालने का आरोप लगाया जा सकता है। इससे राष्ट्रपति की स्थिति गम्भीर रूप से बिगड़ जाएगी।

III. यदि हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि मन्त्रिमण्डल और राष्ट्रपति के बीच विरोध की दशा में, चाहे साधारण रूप से या मामलों के विशिष्ट वर्ग में अन्ततः राष्ट्रपति का मत अभिभावी होना चाहिए, तो इसका यह अर्थ होगा कि उस विस्तार तक मन्त्रिमण्डल का प्राधिकार समाप्त हो जाएगा जो लगातार लोकसभा के नियन्त्रण और आलोचना के अध्यधीन है और ऐसा अभिनिर्धारित करना राष्ट्रपति के प्राधिकार के पक्ष में होगा जो इस प्रकार अध्यधीन नहीं है। इसके परिणामस्वरूप 'युक्तियुक्त सरकार' के प्रभाव-क्षेत्र में कमी हो जाएगी। इतना महत्त्वपूर्ण न्यूनन हमारे संविधान के किसी अभिव्यक्त उपबन्ध द्वारा ही न्यायसंगत हो सकता है।

IV. यदि राष्ट्रपति, किसी विशिष्ट मामले में जहां उसका मत अपने मन्त्रियों के मत से भिन्न हो, सुज्ञात कनवेन्शन को आदर देते हुए अन्ततः उनकी मन्त्रणा स्वीकार कर लेता है तो भले ही उस कार्य से कोई

'मूल अधिकार' या 'निदेशक सिद्धान्त' जो संविधान में प्रतिपादित है, भंग होता है, उत्तरदायित्व मन्त्रियों का होगा न कि राष्ट्रपति का।

दलीलों के दूसरे वर्ग में ऊपर वर्णित बातें इस प्रतिपादना के पक्ष में निश्चायक प्रतीत होती हैं कि अन्ततः राष्ट्रपति को इग्लैण्ड के समान अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा स्वीकार करनी चाहिए।"

128. क्या इससे भारतीय संविधान के अधीन राष्ट्रपति नाममात्र का हो जाता है। ऐसी बात नहीं हैं। इग्लैण्ड में राजा के समान उसे फिर भी परामर्श किए जाने, प्रोत्साहित करने और चेतावनी देने का अधिकार होगा। मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर कार्य करने का आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं है कि मन्त्रियों के द्वारा व्यक्त किए गए प्रथम विचारों को तत्काल स्वीकार कर लिया जाए। किसी भी प्रस्तावित कार्यवाही के सम्बन्ध में राष्ट्रपति अपने सब आक्षेप बतला सकते हैं और यदि आवश्यक हो तो सपरिषद् अपने मन्त्रियों से उस सम्बन्ध में पुनः विचार करने के लिए कह सकते हैं। केवल अन्तिम प्राधिकार के तौर पर ही उन्हें मंत्रियों के अन्तिम परामर्श को स्वीकार करना होगा। यह कहा गया है कि इंग्लैंड के क्राउन का और हाउस आफ लार्ड्स के प्रभाव में कनवेन्शन या कानून द्वारा उसकी विधिक शक्तियों के प्रत्येक न्यूनन से वृद्धि हुई है। भारत में भी यही बात होने की संभावना है; क्योंकि जैसा कहा गया है तर्कपूर्ण बात तब अधिक तत्परता से सुनी जाती है जब वह प्रपीड़न पहुंचाने की नहीं होती किन्तु समझाने-बुझाने तक सीमित रहती है। कोई भी व्यक्ति भारत के राष्ट्रपति के लिए अच्छे भविष्य की, सिवाय इसके कि वे अधिक से अधिक इंग्लैण्ड के सम्राट के समान हों जो विधिक शक्ति से बचे रहें और दलों के टकराव से अलग रहें और जिनका नैतिक प्राधिकार बहुत अधिक हो, कल्पना नहीं कर सकता है। सांविधानिक विद्वता के ये शब्द ऐसे व्यक्ति द्वारा कहे गए हैं जिसने गणतन्त्र के बनाए जाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है और राजनीतिक दलबन्दी से जिसका कोई संबंध नहीं था।

129. पाठ्यपुस्तक लेखकों ने विधि के विद्यार्थियों और वकीलों को यही शिक्षा दी है। वास्तव में स्कूलों की संसद् और विश्वविद्यालयों के गणराज्य-समारोहों में स्वतन्त्रता के बाद की पीढ़ी के विद्यार्थियों के बीच संसदीय प्रजातंत्र की राष्ट्रीय प्रवृत्ति जागृति हो गई है। प्रायः सभी राजनीतिक दल कम-से-कम राज्य स्तर पर कैबिनेट सरकार की मूल उपधारणा के आधार पर पद पर रहे हैं और उन्होंने पद छोड़ा है। ये अतिव्याप्त सामाजिक तथ्य कानूनी निर्वचन के लिए सुसंगत नहीं हैं किन्तु सभी नागरिकों द्वारा यह बात समझने के लिए कि उन्होंने क्या आत्मार्पित किया है, वे अनुपयुक्त नहीं हैं।

130. सर आइवर जेनिंग ने यह बात मानी है कि संघ में राष्ट्रपति और राज्य में राज्यपाल या राज्यप्रमुख आवश्यक रूप से सांविधानिक सम्राट है। सरकारी तन्त्र आवश्यक रूप से इंग्लैण्ड के समान है और इंग्लैण्ड के संविधान की सभी कनवेन्शनों को स्पष्ट रूप से कनवेन्शनों के तौर पर समाविष्ट किया गया है। लेखक ने यह उल्लेख किया है कि संविधान के पाठ द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियां दी गई हैं किन्तु इतिहास से मोडस विवेंडी (कार्य निर्वहन रीति) का उपबन्ध किया ही जाना चाहिए। 'क्राउन एण्ड कामनवैल्थ इन एशिया' शीर्षक के एक लेख में उन्होंने यह लिखा है—

> "ऐसा प्रतीत होता है कि डा० राजेन्द्र प्रसाद काफी निष्ठा से ब्रिटिश कनवेन्शनों का पालन कर रहे हैं। किन्तु संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है जो उनसे या उनके उत्तराधिकारियों से ऐसा करने की अपेक्षा करता हो और उनमें से कोई यह कह सकता है कि विदेशी राजशाही में अनुसरित की जाने वाली सांविधानिक परिपाटियों का अनुसरण करने के लिए वह आबद्ध नहीं है और यह कि वह केवल विधि का पालन ही करना चाहता है।"

हमने विभिन्न स्रोतों से काफी विस्तार से उद्धरण दिए हैं जो "क्वेटेशनल ज्यूरिस्प्रूडेन्स" अपनाने के लिए नहीं किया गया है किन्तु यह साबित करने के लिए किया गया है कि सांविधानिक विधि में सही अर्थान्वियन केवल यह हो सकता है कि 'कृत्य' राष्ट्रपति और राज्यपाल के ही हो सकते हैं और सरकार का कामकाज मंत्री का क्षेत्र है न कि राज्य के प्रधान का और मन्त्रियों की 'सहायता और मन्त्रणा' कला के शब्द, जिनका विधि के अनुसार अर्थ है कि हमारी सांविधानिक स्कीम में कैबिनेट के संदर्भ में सहायता पहुंचाने वाला कार्य करता है और सलाहकार अपने प्राधिकार से स्वयं विनिश्चित करता है और वह ऐसी कार्यवाही या विनिश्चय को सिवाय राज्यपालों की दशा में उस सीमित विस्तार तक जो अनुच्छेद 163 द्वारा अनुज्ञात किया गया है, स्वीकार करने या रद्द करने के लिए राष्ट्रपति की शक्ति के अध्यधीन नहीं है और उसका विवेक केन्द्र की नीति से बहुत कम नियन्त्रित होता है।

131. जब भारत के राष्ट्रपति के तौर पर डा० प्रसाद ने सितम्बर, 1951 में हिन्दू कोड बिल पर हस्ताक्षर करने में हिचकिचाहट व्यक्त की और प्रधानमंत्री नेहरू को यह लिखा कि क्या वे अपने विवेक का प्रयोग कर सकते हैं। श्री नेहरू ने ठकुरसुहाती बात नहीं कही—

> "सांविधानिक सरकार की पूरी विचारधारा राष्ट्रपति द्वारा ऐसे किसी प्राधिकार के प्रयोग किए जाने के विरुद्ध है।"

132. भारत के प्रथम महान्यायवादी ने जिनसे प्रथम राष्ट्रपति और प्रथम प्रधानमन्त्री दोनों ने ही इस प्रश्न पर परामर्श किया, यह सलाह दी—

"मैंने इस मामले पर बहुत सावधानी से विचार कर लिया है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि हमारे संविधान के अधीन जिसमें इंग्लैण्ड की संसदीय सरकार का रूप अपनाया गया है जिसमें कैबिनेट संयुक्त रूप से संसद् (लोकसभा) के प्रति उत्तरदायी होती है, राष्ट्रपति निश्चित रूप से सांविधानिक प्रधान है। ब्रिटिश सांविधानिक विधि और परिपाटी में 'सहायता और मन्त्रणा' अभिव्यक्ति के अर्थ से अभिप्रेत है कि राष्ट्रपति मन्त्रि-परिषद् द्वारा उन्हें दी गई 'सहायता और मन्त्रणा' के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध हैं। मैंने अपने इस मत के समर्थन में कई प्रामाणिक व्यवस्थाओं के प्रति निर्देश किया है। मैंने यह बतलाया है कि जब एक बार यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया गया तो वह राष्ट्रपति के सभी कार्यों पर लागू होगा। इसका अपवाद शायद कुछ स्थितियां हो सकती हैं जिनमें मन्त्रिपरिषद् राष्ट्रपति को मन्त्रणा देने में समर्थ न हो। उदाहरण के लिए इस कारण से कि जब राष्ट्रपति द्वारा किसी कार्यपालिक कृत्य का निर्वहन करने का अनुमान किया गया है, मन्त्रि-परिषद् अस्तित्व में न हो।"

श्री सीतलवाड ने इसके पश्चात् दो घटनाएं और वर्णित की हैं जिनमें राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने उनके संबंध में श्री सीतलवाड से राय मांगी थी। राष्ट्रपति यह जानना चाहते थे कि क्या वे हिन्दू कोड बिल को कानून बनने से रोक सकते हैं। महान्यायवादी ने उन्हें सलाह दी कि राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध है। दूसरे अवसर पर राष्ट्रपति ने यह जानना चाहा कि क्या सेवा के सर्वोच्च कमाण्डर के तौर पर वह सुरक्षा बलों के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए सेना के किसी अधिकारी को व्यक्तिगत रूप से बुला सकते हैं। इस मामले में भी सीतलवाड ने 'दृढ़तापूर्वक नकारात्मक' उत्तर दिया। सर अल्लादी ने, जिनका मत भी इन्हीं नाजुक विवाद्यकों की बाबत राष्ट्रपति प्रसाद ने जानना चाहा था, यही बात इस प्रकार कही—

"उत्तरदायी सरकार के तत्वों का विस्तार में उल्लेख किए बिना हमारे संविधान में आयरलैण्ड के सिवाय अधिकांश डोमीनियन संविधानों के उदाहरण का अनुसरण किया गया है। जैसा कि सुज्ञात है, आयरलैण्ड की दशा में उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जिनमें आयरलैण्ड का संविधान अस्तित्व में आया, कैबिनेट सरकार के तत्व विस्तार से बतलाने का प्रयत्न किया है।"

"एक बात जिस पर राष्ट्रपति ने अपने टिप्पण में ध्यान नहीं दिया, यह है कि यद्यपि कार्यपालिका शक्ति तकनीकी दृष्टि से राष्ट्रपति में निहित है, उसी प्रकार जैसी कि इंग्लैण्ड में क्राउन में निहित है, संविधान के अनुच्छेद 74 के अधीन राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् का उपबन्ध है जिसका प्रधान प्रधानमन्त्री होगा। अनुच्छेद 74 का स्वरूप सर्वव्यापी है और उसमें एक प्रकार और दूसरे प्रकार के कृत्य के बीच कोई अन्तर नहीं किया गया है। वह राष्ट्रपति में निहित सभी कृत्य और शक्ति को लागू होता है चाहे वह सदन को संबोधित करने या पुनः विचार करने के लिए विधेयक लौटाने या विधेयक पर अनुमति देने या अनुमति रोकने की बाबत हो। विधिक रूप से या तकनीकी रूप से राष्ट्रपति में निहित कृत्यों का सम्पादन करने में राष्ट्रपति द्वारा अपने मन्त्रियों की सलाह से मार्गदर्शन प्राप्त न करना सांविधानिक दृष्टि से अनुचित होगा। अनुच्छेद 74 में 'सहायता और मन्त्रणा' अभिव्यक्ति का इस प्रकार अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता जिससे कि राष्ट्रपति स्वतन्त्र रूप से या कैबिनेट की मन्त्रणा के विरुद्ध कार्य करने में समर्थ हो जाए।" राष्ट्रपति ने अपने टिप्पण में इस बात पर ध्यान नहीं दिया है कि अनुच्छेद 111 के अधीन अन्तर्निहित मुख्य मुद्दा पुनर्विचार हेतु विधेयक वापस करने की शक्ति से संबंधित है। यहां भी यह आशयित नहीं है कि राष्ट्रपति कैबिनेट के ऊपर पुनरीक्षण या अपील प्राधिकारी होगा। कोई विधेयक प्राइवेट सदस्य या कैबिनेट के सदस्य द्वारा पुरःस्थापित किया जा सकता है। वह संसद् द्वारा पारित किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा उसके पारित किए जाने के पश्चात् कैबिनेट को कोई स्पष्ट चूक या भूल ज्ञात हो सकती है। अतः किसी अन्य शक्ति के समान ही राष्ट्रपति में निहित इस शक्ति का प्रयोग कैबिनेट की मन्त्रणा पर किया जाना आशयित है।

यद्यपि विचार-विमर्श के जरिए डा० अम्बेडकर द्वारा संविधान में इस सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं रहने दिया गया था और हम में से ऐसे व्यक्तियों का जिन्होंने डिबेट में प्रमुख भाग लिया, यह मत था कि प्रदत्त प्रत्येक शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा के अनुसार ही करेंगे अन्यथा वे संविधान का उल्लंघन करने के लिए भी दोषी हो सकते हैं। देखिए—संविधान सभा के डिबेट, जिल्द 7, पृष्ठ 935, 998, 1158 और जिल्द 9, पृष्ठ 150 आदि।"

133. हम इन रायों को शिष्टता के रूप में दी गई दलीलों (ग्रारगूमेंटम एड वेरीकुण्डियम) के तौर पर प्रोद्धृत नहीं कर रहे हैं यद्यपि लेखक विधि के धुरन्धर विद्वान् हैं किन्तु इस कारण कर रहे हैं कि इस नाजुक सांविधानिक विवाद्यक पर प्रत्येक बार विचार करने से सार्थक प्रतिक्रिया हुई है जिससे सांविधानिक परिपाटी के इतिहास में शुरू में ही उसका क्रम निश्चित हो गया ग्रौर वह स्थिर हो गई। सेमिनारों में प्रकट किए गए कुछ ग्रसंतोष को ग्रौर संविधान के क्रियाशील होने पर कुछ बड़े लोगों द्वारा उठाए गए छोटे-मोटे प्रश्नों को छोड़ कर कार्यवाही उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्त के ग्रनुसार ठीक हुई है।

134. फेल्लिज् फ्रेंकफर्टर के मुहावरे के ग्रनुसार यह वह व्याख्या है जो हमारे सांविधानिक खण्डों के संबन्ध में जीवन के ग्राधार पर की गई है ग्रौर न्यायालय को ग्रपने कृत्यों के सम्पादन में इस व्याख्या को प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा वह ग्रपने विनिर्णयों में सांविधानिक संरचना के प्रारम्भ, सूत्रित किए जाने ग्रौर विकास का संतुलन बनाए रख कर ग्रौर कैबिनेट सरकार के लोकतान्त्रिक तत्त्व में कमी करने में मदद न देकर कर सकता है। संगठनात्मक विधि के सजीव शब्दों का गलत शाब्दिक ग्रर्थान्वयन करके सांविधानिक दृष्टि से तख्ता पलटने की कल्पना की जा सकती है। जैसा प्रोफेसर एलिन ग्लेण्डहिल ने लिखा है, हमें सावधान रहना चाहिए—

> "हम यह मान लें कि ऐसा राष्ट्रपति निर्वाचित हुग्रा है जिसने सरकार की निरंकुश पद्धति स्थापित करने की ग्रपनी इच्छा सफलतापूर्वक छिपाए रखी है। संसद् के एक सदन के एक-चौथाई सदस्य इस खतरे के बारे में एकाएक जागरूक हो जाते हैं ग्रौर वे राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने के प्रस्ताव की सूचना देते हैं। चौदह दिन के पहले जिस कालावधि में वह सदन में पेश किया जा सकता है, राष्ट्रपति संसद् को विघटित कर देते हैं। एक नया सदन निर्वाचित होना ही चाहिए किन्तु यह जरूरी नहीं है कि छह मास के पहले उसकी बैठक हो। वह मन्त्रियों को पदच्युत कर देते हैं ग्रौर ग्रपनी पसन्द के ग्रन्य मन्त्रियों को नियुक्त करते हैं जिन्हें छह मास तक संसद् के सदस्य होना जरूरी नहीं है ग्रौर उस कालावधि के दौरान वह ग्रध्यादेश के द्वारा विधि निर्माण कर सकते हैं। वह ग्रापात की उद्घोषणा जारी कर सकते हैं। किसी भी विषय पर विधि बना सकते हैं ग्रौर वितरण योग्य करों के ग्रागमों के ग्रंशों से राज्यों को वंचित कर सकते हैं जिसकी ग्रवज्ञा किया जाना परिकल्पित हो ग्रौर तब राज्यों के संविधानों को निलम्बित कर सकते हैं। सिविल

शक्ति के समर्थन में वे सशस्त्र बल का प्रयोग कर सकते हैं। वे निवारक निरोध अध्यादेश प्रख्यापित कर सकते हैं और अपने विरोधियों को जेल में डाल सकते हैं।"

विद्वान् न्यायविद् ने आगे यह टिप्पणी की—

"संविधान द्वारा संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और उसमें यह उपबन्धित है कि सभी कार्यपालिक कार्यवाही उसके नाम पर की जाएगी। राष्ट्रपति को बहुत सी शक्तियां भी दी गई हैं जिन पर हम आगे विचार करेंगे। किन्तु पिछले चौदह वर्षों से दुनिया को यह ज्ञात हुआ है कि भारत में संसदीय लोकतन्त्र है जिसमें मन्त्रिगण नीति निर्धारित करते हैं और सरकार चलाते हैं। किन्तु संविधान में यह बात पर्याप्त शब्दों में नहीं कही गई है कि राष्ट्रपति को मन्त्रियों की मन्त्रणा पर ही कार्य करना होगा। उसमें यह कहा गया है कि राष्ट्रपति को सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होगी। कोई भी न्यायालय इस प्रश्न की जांच नहीं कर सकता कि क्या राष्ट्रपति को कोई मन्त्रणा दी गई थी, और यदि मंत्रणा दी गई थी, तो क्या मन्त्रणा दी गयी थी। संविधान में यह अनुध्यात है कि मामूली तौर पर जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों में से चुने गए मन्त्रियों की समिति के द्वारा सरकार चलाई जाएगी। किन्तु उसमें यह स्वीकार किया गया है कि ऐसी परिस्थितियां उद्भूत हो सकती हैं जिनमें वह पद्धति नष्ट हो जाए। अतः यह वांछनीय है कि ऐसा कोई प्राधिकारी होना चाहिए जो सरकार चालू रखने के लिए सशक्त हो और यथासंभव शीघ्र संसदीय सरकार को प्रत्यावर्तित करने की कार्यवाही कर सके। इस कारण से ही संविधान द्वारा कार्यपालिका शक्ति विधिक रूप से राष्ट्रपति में निहित है।"

135. हम सांविधानिक निर्वचन में 'दृष्टि धूमिल होने' की इजाजत नहीं दे सकते क्योंकि राजनीति के पंडितों को निर्वाचन प्रक्रिया में गम्भीर खामियां दिखाई देती हैं। सामाजिक कार्यकर्ता, सत्ताधारी दलों द्वारा सत्ता का दुरुपयोग करके भ्रष्टाचार करने की शिकायत करते हैं और जनसाधारण विधायकों को बेपरवाह और प्रभावहीन पाता है। बहरहाल कोई भी समाजशास्त्री इस बात से सहमत होगा कि तेजी से परिवर्तित होने वाली और एक-दूसरे को प्रभावित करने वाली इस दुनिया में जनता की सरकार के तन्त्र में पुनः समायोजन और नए प्रयोग की सतत् प्रक्रिया होनी चाहिए। न्यायाधीश होने के नाते, हम सांविधानिक समस्याओं पर सर्जनात्मक समझ पैदा करने का प्रयत्न कर सकते हैं किन्तु सम्भाव्य नए परिवर्तनों का कार्यक्रम नहीं बना सकते।

136. चूंकि संविधान हमारी भावना की घोषणा का मूर्त रूप है न कि विधियों का संकलन, अतः पूर्ववर्ती ऐसे निर्णय को रास्ते से हटा देना चाहिए जिसने हमारे सांविधानिक दर्शन को भंग किया है या संविधान के महत्त्वपूर्ण शब्दों में अभिव्यक्त सिद्धान्तों के महत्त्वपूर्ण विस्तार को कम किया है। अतः हमें क्रियात्मक दृष्टि से इस बात की परीक्षा करनी होगी कि इस न्यायालय ने राष्ट्रपति (या राज्यपाल) और उसके विपरीत उसकी मन्त्रि-परिषद् के सम्बन्ध में भूतकाल में क्या अभिनिर्धारित किया है। उच्च न्यायालय की प्रशासनिक शक्ति पर राज्य न्यायपालिका की शक्ति और परिवीक्षाधीन व्यक्ति के, यदि उसकी अस्थिर पदावधि समाप्त कर दी जाती है, प्रक्रिया संबन्धी, यदि कोई अधिकार हैं, तो वे अधिकार क्या हैं।

137. इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों के ऊपर वर्णित मुद्दे पर बहुत अधिक संख्या में विनिश्चय हैं और उनके द्वारा बुना मकड़ी का विधिक जाला इतना बारीक है कि व्यक्ति को आश्चर्य होता है कि क्या एक हद के बाहर पूर्वोदाहरणों की अधिकता शासन करने के लिए मामूली आदमी की समझ के भीतर होनी चाहिए, और क्या ऐसी अधिकता संविधान को समझने में प्रतिकूल असर पैदा करती है। हम प्रमुख रूप से महत्त्वपूर्ण विनिश्चयों पर अपना ध्यान आकृष्ट करेंगे। निर्णयज-विधि के शेष समूह को जिनमें प्रधान सांविधानिक प्रस्थापनाएं हैं, उड़ती नज़र से देखना ही पर्याप्त होगा।

138. न्यायिक प्राधिकार का बहुत अधिक वजन सरकार की कैबिनेट पद्धति के पक्ष में है जो कि संविधान में अन्तर्विष्ट है। **राय साहब राम जवाया कपूर** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में न्यायाधिपति मुखर्जी ने यह मत व्यक्त किया—

> "यद्यपि हमारे संविधान की संरचना संघीय है, वह ब्रिटिश संसदीय पद्धति पर बना हुआ है जिसमें सरकारी नीति निर्धारित करने के लिए और उसे विधि में बदलने में कार्यपालिका की प्रमुख जिम्मेदारी समझी जाती है यद्यपि इस उत्तरदायित्व के प्रयोग के लिए पूर्ववर्ती शर्त राज्य की विधायी शाखा का विश्वास बनाए रखना है।
>
> * * * *
>
> इंग्लैण्ड के समान भारत में कार्यपालिका को विधानमण्डल के नियंत्रण के अधीन कार्य करना होता है। किन्तु विधानमण्डल द्वारा यह नियन्त्रण किस प्रकार प्रयोग किया जाता है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 53(1) के

[1] (1955) 1 एस० सी० आर० 255.

अधीन संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। किन्तु अनुच्छेद 74 में उपबन्धित है कि राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का संपादन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होगी जिसका प्रधान प्रधान-ममंत्री होगा। इस प्रकार राष्ट्रपति कार्यपालिका का नाममात्र का या सांविधानिक प्रधान बनाया गया है और असली कार्यपालिका शक्तियां कैबिनेट के मन्त्रियों में निहित हैं। राज्यों की सरकार के संबन्ध में भी ऐसे ही उपबन्ध हैं। राज्य में यथास्थिति, राज्यपाल या राजप्रमुख कार्यपालिका के प्रधान की हैसियत रखता है किन्तु वास्तव में हर एक राज्य में मन्त्रि-परिषद् ही कार्यपालिका सरकार चलाती है। अतः भारतीय संविधान में संसदीय कार्यपालिका की वही पद्धति है जैसी इंग्लैण्ड में है और मन्त्रि-परिषद्, विधानमण्डल के सदस्यों से मिलकर उसी प्रकार बनती है जैसी कि ब्रिटिश कैबिनेट है 'जो योजक है जो जोड़ती है'। वह एक बकसुआ है जो राज्य के विधायी भाग को कार्यपालिका भाग से बांधती है। कैबिनेट का विधानमण्डल में बहुमत होता है। अतः वह विधायिका और कार्यपालिका दोनों प्रकार के कृत्यों पर अपना नियन्त्रण रखती है और यह अनुमान किया जाता है कि कैबिनेट मन्त्री मूलभूत बातों पर सहमत होते हैं और वे सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार कार्य करते हैं और नीति के बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न उनके द्वारा ही सूत्रित किए जाते हैं।"

139. **विजय लक्ष्मी काटन मिल्स लिमिटेड** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने स्पष्ट रूप से यह विनिर्णय दिया कि 'इस मामले **में राज्यपाल का वैयक्तिक समाधान** जरूरी नहीं था क्योंकि यह कारबार की ऐसी मद नहीं है जिसके सम्बन्ध में संविधान द्वारा या उसके अधीन राज्यपाल से अपने विवेक के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा की गई है यद्यपि राज्य की कार्यपालिका सरकार राज्यपाल में निहित है किन्तु वास्तव में वह मंत्रियों द्वारा चलाई जाती है और इस विशिष्ट मामले में कामकाज के नियमों के नियम 4 और 5 के अधीन जिन के प्रति ऊपर उल्लेख किया गया है, सरकार का कामकाज उसकी प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न विभागों द्वारा किया जाता है।" (जोर देने के लिए रेखांकन हमने किया है)।

140. **संजीवी नायडू** बनाम **मद्रास राज्य**[2] वाले मामले में यह प्रश्न उद्भूत हुआ था कि क्या ऐसे मामले में जिसमें किसी केन्द्रीय कानून अर्थात्

[1] 1967 2 एस० सी० आर० 406.

[2] (1970) 3 एस० सी० आर० 505.

मोटरयान अधिनियम, द्वारा राज्य सरकार में जिसका साधारण खण्ड अधिनियम की परिभाषा द्वारा अर्थ राज्यपाल हो, कतिपय शक्तियां निहित की गई हों, मंत्री द्वारा जिसे कामकाज के नियमों द्वारा सुसंगत कामकाज आबंटित किया गया हो, पारित किए गए आदेश विधिमान्य थे। न्यायाधिपति हेगडे ने अपनी ओर से और अपने पांच सहयोगियों की ओर से निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"हमारे संविधान के अधीन राज्यपाल आवश्यक रूप से सांविधानिक प्रधान है। राज्य का प्रशासन मन्त्रि-परिषद् द्वारा चलाया जाता है। किन्तु वस्तुस्थिति को देखते हुए मन्त्रि-परिषद् के लिए हर एक कार्य पर जो सरकार के समक्ष आता है, कार्यवाही करना असम्भव है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए संविधान द्वारा अनुच्छेद 166 के उप-अनुच्छेद (3) के अधीन राज्य की सरकार का कार्य अधिक सुविधापूर्वक किए जाने के लिए और सरकार के कामकाज को मन्त्रियों के बीच कार्य के बंटवारे के लिए राज्यपाल नियम बनाने के लिए प्राधिकृत किया गया है। उन विषयों के सिवाय सभी विषयों की बाबत जिनमें राज्यपाल से अपने विवेक के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा है, राज्यपाल मुख्य मन्त्री की मन्त्रणा पर एक या दूसरे मन्त्री को विषयों का बंटवारा करता है। मंत्रियों के बीच कामकाज के बंटवारे के अलावा राज्यपाल अपनी मन्त्री परिषद की मन्त्रणा पर कामकाज के अधिक सुविधापूर्वक किए जाने के लिए नियम भी बना सकता है। वह न केवल मन्त्रियों के बीच विभिन्न विषयों का बंटवारा ही कर सकता है किन्तु इसके अतिरिक्त किसी विशिष्ट कृत्य का निर्वहन करने के लिए किसी विशिष्ट अधिकारी को पदाभिहित भी कर सकता है। किन्तु ऐसा वह अपनी मन्त्रि-परिषद की मन्त्रणा पर ही कर सकता है।

कैबिनेट (मंत्रिमंडल) किसी भी मन्त्री द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य के लिए विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। यही संयुक्त उत्तरदायित्व का सार है। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक विनिश्चय कैबिनेट द्वारा ही किया जाना चाहिए। मन्त्रि-परिषद् का राजनैतिक उत्तरदायित्व सरकार के सभी या किसी कृत्य का निर्वहन करने वाले मन्त्रियों पर वैयक्तिक रूप से नहीं डाला जा सकता। इसी प्रकार प्रत्येक मन्त्री व्यक्तिशः अपने मन्त्रालय द्वारा किए गए या न किए गए प्रत्येक कार्य के लिए विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी है। यह भी राजनैतिक उत्तरदायित्व है न कि वैयक्तिक उत्तरदायित्व।"

141. पुनः इस न्यायालय के सात न्यायाधीशों से गठित न्यायपीठ ने बैंक राष्ट्रीयकरण के नाम से विख्यात (**आर कूपर० सी० बनाम भारत संघ**)[1] वाले मामले में हमारे संविधान के स्वरूप की बाबत निम्नलिखित विनिश्चायक शब्दों में घोषणा की —

"संविधान के अधीन, सांविधानिक प्रधान होने के कारण राष्ट्रपति अध्यादेश के प्रख्यापन को सम्मिलित करते हुए सभी बातों में मामूली तौर से अपनी मन्त्रि-परिषद् की मन्त्रणा के अनुसार कार्य करता है। किसी विशिष्ट मामले में राष्ट्रपति अपनी मन्त्रि-परिषद् की मन्त्रणा से मार्ग-दर्शन प्राप्त करने से इन्कार कर सकता है या नहीं, ऐसी बात है जिसके कारण हमें रुक नहीं जाना चाहिए। अध्यादेश राष्ट्रपति के नाम से प्रख्यापित किया जाता है और सांविधानिक अर्थ में उसका समाधान होने पर प्रख्यापित किया जाता है। वास्तव में वह उसकी मन्त्रि-परिषद् की मन्त्रणा पर और उनका समाधान हो जाने पर प्रख्यापित किया जाता है।"

142. हाल में एक विनिश्चय **यू० एन० राव** बनाम **श्रीमती इंदिरा गांधी**[2] में न्यायालय की निर्णय देते हुए मुख्य न्यायाधिपति सीकरी ने यह बात दोहराते हुए कि हम संविधान का न कि संसद् के एक अधिनियम का निर्वचन कर रहे हैं, ऐसे संविधान का जिसके द्वारा कैबिनेट युक्त सरकार की संसदीय पद्धति स्थापित की गई है, जिसमें संविधान विरचित किए जाने के समय प्रचलित कन्वेन्शनों (परिपाटियों) को ध्यान में रखना उचित समझा गया।

143. उक्त मामले में कैबिनेट पद्धति का जिज्ञासायुक्त एक विचित्र पहलू उद्भूत हुआ अर्थात् क्या सांविधानिक दृष्टि से राष्ट्रपति संसद् के विघटित कर दिए जाने के पश्चात् जिसके प्रति जनता की ओर से शासन करने के लिए जिम्मेदारी कैबिनेट का प्रत्यय-पत्र है, अपने हाथ में बागडोर संभालने की बजाय अपनी मन्त्रि-परिषद् को देश पर शासन करने दे सकता है। राष्ट्रपति के निर्वाचन, पद की शपथ, प्रत्यक्ष रूप से प्रशासन करने की विधिक हैसियत आदि सभी बातों से सम्बन्धित क्षेत्रों पर व्यापक रूप से विचार करते हुए मुख्य न्यायाधिपति सीकरी ने विधि इस प्रकार घोषित की—

"संविधानसभा ने शासन की राष्ट्रपतीय पद्धति नहीं चुनी थी। यदि हम अपीलार्थी की इस दलील को ठीक मानते हैं तो हम कार्यपालिका की सम्पूर्ण धारणा को बदल देंगे। इसका अर्थ होगा कि राष्ट्रपति को अपने कृत्यों के प्रयोग में सहायता करने और मन्त्रणा देने के लिए प्रधानमन्त्री

---

[1] (1970) 3 एस० सी० आर० 530.

[2] (1971) सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 46; [1971] 2 उम० नि० प० 612.

और मन्त्रियों को रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। चूंकि कोई मन्त्रि-परिषद् नहीं होगी, इसलिए कोई भी लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा। सलाहकारों की सहायता से राष्ट्रपति कम-से-कम उस समय तक, जब तक कि अनुच्छेद 61 के अधीन उस पर महाभियोग नहीं लगाया जाता, देश पर शासन कर सकेगा।

X X X X

अपीलार्थी ने यह दलील दी है कि चूंकि लोक-सभा का विघटन कर कर दिया गया है इसलिए इस खण्ड का अनुपालन नहीं किया जा सकता है। उसका कहना है कि इस खण्ड के उपबन्धों से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमें यह अनुध्यात है कि लोक-सभा के विघटन पर प्रधानमन्त्री और अन्य मन्त्रियों को पद त्याग कर देना चाहिए या उन्हें राष्ट्रपति द्वारा पदच्युत कर दिया जाना चाहिए और जैसा कि हमने ऊपर बताया है, अनुच्छेद 74 (1) आज्ञापक है और इसलिए राष्ट्रपति मन्त्रि-परिषद् की सहायता और मन्त्रणा के बिना कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है। अतः हमें अनुच्छेद 75 (3) के उपबन्धों को अनुच्छेद 74 (1) और अनुच्छेद 75 (2) के साथ समन्वित करना चाहिए। अनुच्छेद 75 (3) एक ऐसी सरकार अस्तित्व में लाता है जिसे प्रायः 'उत्तरदायी सरकार' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में मन्त्रि-परिषद् को लोक-सभा का विश्वास प्राप्त होना चाहिए जब कि लोक-सभा का विघटन अनुच्छेद 85 (2) (ख) के अधीन नहीं किया जाता है तब अनुच्छेद 75 (3) का पूरा प्रवर्तन होता है। किन्तु जब उसका विघटन कर दिया जाता है तब यह स्वाभाविक है कि मन्त्रि-परिषद् लोक-सभा का विश्वास प्राप्त नहीं कर सकती। किसी ने भी यह नहीं कहा है कि मन्त्रि-परिषद् को उस समय लोक-सभा का विश्वास प्राप्त नहीं था जब उसका सत्रावसान किया गया था। इसलिए संदर्भ के अनुसार इस खण्ड को इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए जिससे कि यह अभिप्रेत हो कि अनुच्छेद 75 (3) केवल तभी लागू होता है जब लोक-सभा विघटित नहीं हो जाती या उसका सत्रावसान नहीं हो जाता। हमारा ऐसे मामले से सम्बन्ध नहीं है जहां लोक-सभा का विघटन अनुच्छेद 83 (2) के अधीन विहित पांच वर्ष की कालावधि के अवसान के पश्चात् हो जाता है क्योंकि संसद् ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 14 में उस आकस्मिकता के लिए उपबन्ध कर दिया है। हमारे निर्वचन के अनुसार संविधान के अन्य अनुच्छेद भी अर्थात् अनुच्छेद 77 (3) का, जिसमें मन्त्रियों के बीच कार्य का बंटवारा अनुध्यात है, और अनुच्छेद 78

जिसमें प्रधानमन्त्री के कुछ कर्त्तव्य विहित किए गए हैं, पूरी तरह से लागू होते हैं।" (ज़ोर देने के लिए रेखांकन हमारी ओर से किया गया है)।

144. राज्य विधानमण्डल के विघटित हो जाने के पश्चात् मन्त्रिमण्डल के अस्तित्व में बने रहने के सांविधानिक अधिकार पर **के० एन० राजगोपाल** बनाम **वी० एम० करुणानिधि**[1] वाले मामले में प्रकाश डाला गया है। **इन्दिरा गांधी**[2] वाले मामले के निर्णयाधार को अपनाते हुए इस न्यायालय ने यूनाइटेड किंगडम की पद्धति की बाबत दलील नामंज़ूर कर दी।

145. इस न्यायालय के विनिर्णयों को ध्यान में रखते हुए, हमें जो विश्लेषण आकर्षक लगता है वह श्री कीथ द्वारा 'दि किंग एण्ड दि इम्पीरियल क्राउन' की प्रस्तावना में अभिव्यक्त किए गए मत के अनुकूल है—

> "क्राउन के स्वशासी डोमीनियनों में जनता का यह विश्वास है कि शासकीय बातों में गवर्नर जनरल का महत्व 'रबर की मोहर' से अधिक नहीं होता है।"

असली और शाब्दिक अन्तर की बाबत इंग्लैण्ड में भी विलियम पाले द्वारा बतलाए गए अनुसार—

> "सरकार की असली स्थिति और सिद्धांत के बीच बहुत अधिक अन्तर है। जब हम ब्रिटिश सरकार के सिद्धांत का अनुध्यान करते है तो हम देखते है कि राजा में विधियां नामंज़ूर करने की शक्ति X X X X X निहित है। फिर जब हम विधिक सीमा से अपना ध्यान इंग्लैण्ड में राजा के प्राधिकार के वास्तविक प्रयोग की ओर ले जाते हैं तो हम यह पाते हैं कि ये अभेद्य परमाधिकार नाममात्र के अधिकार हैं और उनके स्थान पर निश्चित और प्रभावशाली असर की बाबत ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान पूर्ण रूप से अनभिज्ञ है।"

146. लाज आफ इंग्लैण्ड पर ब्लैकस्टोन की 'कमेण्ट्रीज' में डायसी ने कहा है कि विद्यार्थी यह पढ़ सकते हैं कि संविधान द्वारा सभी कार्यपालिक शक्ति राजा के हाथ में केन्द्रित हैं। उन्होंने यह टिप्पणी की कि इस अवतरण की भाषा प्रभावशाली है "X X X इसमें केवल एक दोष है, वह यह है कि इसमें जो कथन अन्तर्विष्ट हैं, वे सत्य के बिल्कुल विपरीत हैं।"

---

[1] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 1551.

[2] (1971) सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 46; [1971] 2 उम० नि० प० 612.

147. भारत में राष्ट्रपति महिमामण्डित निरर्थक पदधारी नहीं है। वह सब से ऊपर है और राज्य के गौरव का प्रतिनिधित्व करता है यद्यपि ऐसा वह प्रतीक स्वरूप ही करता है। वह राजनीति से ऊपर रहता है जिससे उसका संबंध जनता और दलों से होता है। यदि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है तो उसकी जागरूक मौजूदगी से अच्छी सरकार बनती है जैसा बैगहाट ने वर्णित किया है— "परामर्श किए जाने, चेतावनी देने और प्रोत्साहित करने का अधिकार।" वास्तव में यदि अनुच्छेद का बुद्धिमानी से प्रयोग किया जाए तो राष्ट्रीय महत्त्व और नीति की सार्थकता की बातों की बाबत प्रधानमन्त्री का राष्ट्रपति से निकट का संपर्क बना रहता है और इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि उसके व्यक्तित्व के प्रभाव से राजनैतिक सरकार शुचिता एवं शुद्धता की ओर बढ़े यद्यपि विधि द्वारा उसे सौंपे गए कृत्यों का प्रयोग प्रभावशाली रूप से और विधि के अनुसार उसके द्वारा सम्यक् रूप से नियुक्त किए गए मन्त्रियों द्वारा चलाया जाता है अर्थात् प्रधानमंत्री और उसके सहयोगियों द्वारा। संक्षेप में राष्ट्रपति राजा के समान सांविधानिक दृष्टि से कार्य नहीं करता है किन्तु उसमें वास्तव में व्यापक और समझाने-बुझाने का कार्य निहित है। राजनैतिक सिद्धांतवादी क्राउन के गतिशील रोल से अच्छी तरह वाकिफ हैं जिसके द्वारा वह राजनीति और सत्ता से दूर रहता है और फिर भी दोनों को प्रभावित करता है। जब वह ऐसा रोल पूरा करता है, वह किसी भी अर्थ में सत्ता का प्रतिस्पर्द्धी केन्द्र नहीं है और उसे अपने मन्त्रियों द्वारा दी गई मन्त्रणा का पालन करना चाहिए और उसके अनुसार कार्य करना चाहिए, सिवाय एक सीमित क्षेत्र के जो कभी-कभी फिसलन भरा होता है।

147-क. निस्संदेह राष्ट्रपति और राज्यपाल की स्थिति के बीच कुछ गणतन्त्रात्मक अन्तर है। पूर्ववर्ती को अनुच्छेद 74 के अधीन कोई वैवेकिक शक्ति नहीं है। पश्चात्वर्ती को भी अनुच्छेद 163(2), 371-क (1)(ख) और (घ), 171-क (2), (ख) और (च), अनुसूची 6, पैराग्राफ 5(2) और 21-1-1972 से पहले हाल में ही लुप्त किए जाने तक अनुसूची 6, पैरा 18(3) द्वारा दी गई कुछ छोटी-मोटी शक्तियों के सिवाय कोई शक्ति नहीं है। ये वैवेकिक शक्तियां उन क्षेत्रों में ही अस्तित्व में हैं, जहां वे स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त की गई हैं और ऐसे स्थलों पर भी वे राज्यपाल की मर्जी पर नहीं छोड़ी गई हैं किन्तु वे संघ के मन्त्रालय द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं जो उनकी बाबत संसद् के प्रति उत्तरदायी है। पुनः अनुच्छेद 356 के अधीन भेजी जाने वाली रिपोर्टों के अधीन आने वाला क्षेत्र अपनी प्रकृति के कारण ही मन्त्रियों की मन्त्रणा के अधीन नहीं है। संघ सरकार को नियतकालिक रिपोर्ट भेजने की पद्धति संविधान के पहले की कार्य पद्धति है जिसमें गवर्नर अपने मन्त्रियों के चरित्र की फाइल रखता था और उनके

विरुद्ध रिपोर्ट भेजता था या ऐसे मामले में कार्यवाही करता था जो कैबिनेट-द्वारा सरकारी नीति के विरुद्ध तय किए गए थे या प्रत्यक्ष रूप से प्रशासन में हस्तक्षेप करता था । यह वर्तमान समय की नीति के विरुद्ध होने के कारण (फाक्सपाज़) असांविधानिक हैं और ये संसदीय पद्धति के विरुद्ध हैं । अपने सभी सांविधानिक 'कृत्यों में मन्त्री' संविधान द्वारा वैवेकिक शक्ति का प्रयोग करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से चिह्नित किए गए सीमित क्षेत्र के भीतर ही कार्य करते हैं । राज्य के मन्त्रियों के कार्यों और मन्त्रणा से वह स्वतन्त्र है । निस्संदेह इंग्लैंड की प्रथा द्वारा जो भारत की परिस्थितियों में अपनाई गई है, मुख्य मन्त्री को चुनने के बारे में और उसके मन्त्रिमण्डल को बर्खास्त करने के बारे में उसे एक सीमित मुक्त-क्षेत्र उपलब्ध है ।

148. अपीलार्थी के काउन्सेल श्री सांघी ने इस न्यायालय के विनिश्चय से बच निकलने के लिए एक विचित्र दलील यह अपनाई कि भारत में सरकार का कैबिनेट स्वरूप स्वीकार किया गया है । श्री सांघी ने इस बात पर जोर दिया कि मन्त्रिगण अनुच्छेद 77(3) के अधीन सरकार के कामकाज के बंटवारे के आधार पर शक्तियों का प्रयोग करते हैं और अनुच्छेद 74 के आधार पर उन्हें राज्य के प्रधान के सभी कृत्यों का निर्वहन करने का प्राधिकार है फिर भी जहां-जहां संविधान द्वारा राष्ट्रपति या राज्यपाल को अभिव्यक्त रूप से शक्तियां निहित की गई हैं, ये केवल उसे ही प्राप्त होती हैं और कामकाज के सुसंगत नियमों के अधीन होने पर उसकी ओर से मन्त्रियों द्वारा कार्यवाही नहीं की जा सकती । काउन्सेल ने यह बात मानी है कि संसदीय कार्यपालिका के संदर्भ में हम अनुच्छेदों को शब्दशः नहीं पढ़ सकते । किन्तु वह हाल ही में वर्णित कोटि में एक अपवाद पर जोर देते हैं । इस दलील के लिए प्रेरणा **सरदारी लाल**[1] और कुछ अन्य वाले मामले से मिलती है जो राष्ट्रपति और राज्यपाल के लिए वैयक्तिक शक्ति के एक फिजूल-से दावे का समर्थन करते हैं । संसदीय (और लोकप्रिय) प्राधिकार के लिए यह निर्वचन कितना महत्त्वकांक्षी और विनाशक हो सकता है, यह बात स्वतः इससे ही जाहिर होती है जब हम संविधान में इस प्रकार प्रतिपादित महत्त्वपूर्ण शक्तियों की व्यापकता पर विचार करते हैं ।

149. अपीलार्थी के काउन्सेल की दलील यह है कि जब कभी राष्ट्रपति में शक्ति निहित की गई है—और यही बात राज्यपाल पर भी लागू होती है वह सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न अधिकारयुक्त है और उसे व्यक्तिशः कृत्य करना होता है और राष्ट्रपति की शक्ति का प्रयोग प्रतिनिधि के आदेशों द्वारा मन्त्री भी नहीं कर सकता । यह दलील तर्कसंगत है कि यदि अनुच्छेद 311 के अधीन राष्ट्रपति या

1 (1971) 3 एस० सी० आर० 461.

राज्यपाल से अभिप्रेत है वैयक्तिक रूप से राष्ट्रपति या राज्यपाल तो ऐसे ही अन्य अनुच्छेदों के अधीन मन्त्रियों और अधिकारियों को कृत्यों का प्रयोग सौंपने से सम्बन्धित कारबार के नियम विधिमान्य नहीं हो सकते । सचमुच ही ऐसे बहुत-से अनुच्छेद संविधान में हैं जिनमें से अधिकांश दैनिक प्रशासन चलाने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और उनमें रोजमर्रा की या महत्त्वपूर्ण कार्यपालिक, आपातकालीन और विधायी शक्तियां सम्मिलित हैं। क्षमा करने या दण्ड का परिहार करने की शक्तियां (अनुच्छेद 161) मुख्य मन्त्री सहित मन्त्रियों की नियुक्ति करने की शक्ति (अनुच्छेद 164), महाधिवक्ता (अनुच्छेद 165), जिला न्यायाधीश (अनुच्छेद 233), लोक सेवा आयोग के सदस्य (अनुच्छेद 316) इस कोटि के हैं। इसी प्रकार विधानमण्डल के किसी भी सदन का सत्रावसान या विधान-सभा को विघटित करने की शक्ति (अनुच्छेद 174), विधानमण्डल के सदनों को सम्बोधित करने या संदेश भेजने का अधिकार (अनुच्छेद 175 और अनुच्छेद 176), विधेयकों पर अनुमति देने या अनुमति रोक लेने की शक्ति (अनुच्छेद 200) अनुदान की मांगों के लिए सिफारिश करने की शक्ति [अनुच्छेद 203 (3)], प्रतिवर्ष वार्षिक बजट रखवाने का कर्तव्य (अनुच्छेद 202), विधानमण्डल के विरामकाल के दौरान अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति (अनुच्छेद 213) भी इसी प्रकार की शक्ति है। पुनः निर्वाचन आयोग को अनुच्छेद 324(1) द्वारा प्रदत्त कृत्यों के निर्वहन के लिए अपेक्षित कर्मचारिवृन्द उपलब्ध कराने की बाध्यता [अनुच्छेद 324(6)] । आंग्ल-भारतीय समुदाय के एक सदस्य को कतिपय परिस्थितियों में विधानसभा के लिए नामनिर्देशित करने की शक्ति (अनुच्छेद 333), उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में हिन्दी के प्रयोग को प्राधिकृत करने की शक्ति [अनुच्छेद 348(2)], राज्यपाल के कृत्यों के दृष्टान्तस्वरूप हैं।

150. इसी प्रकार राष्ट्रपति को संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अधीन शक्तियां और कर्तव्य सोंपे गए हैं। निस्संदेह वह संघ के रक्षा बलों का सर्वोच्च समादेशक (कमाण्डर) है [अनुच्छेद 53(2)] । वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है और जब विवाद उद्भूत होता है तब पश्चात्वर्तियों की आयु अवधारित करता है। उसे उच्चतम न्यायालय से परामर्श करने के लिए प्रश्नों को निर्देश करने की शक्ति है (अनुच्छेद 143) और उसे यह अभिनिर्धारित करने की शक्ति है कि किसी राज्य का शासन इस संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता (अनुच्छेद 356)। महालेखा परीक्षक, महा न्यायवादी, राज्यपाल और लोक सेवक राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद धारण करते हैं। विधेयक संसद् द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् उस समय तक विधि

नहीं बन सकते जब तक कि राष्ट्रपति की उन पर अनुमति न मिल जाए। भूतपूर्व देशी राज्यों के शासकों को अभिज्ञात करने और अनभिज्ञात करने की शक्ति भी राष्ट्रपति में निहित है। अध्यादेश द्वारा विधिनिर्माण करने की असाधारण शक्तियां, लोक सेवकों को पदच्युत करने के लिए उनके विरुद्ध जांच करने की आवश्यकता खत्म करना, आपात की उद्घोषणा करना, उद्घोषणा द्वारा राज्यों में राष्ट्रपति शासन अधिरोपित करने की बहुत महत्त्वपूर्ण शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं। वास्तव में लोक-सभा बुलाने और सत्रावसान करने और उसे विघटित करने की शक्ति और संसद् द्वारा पारित विधेयकों को लौटाने की शक्ति राष्ट्रपति में है। यदि हम **सरदारी लाल**[1] और **जयन्ती लाल**[2] के विनिर्णयाधार को प्रत्येक ऐसे कर्तव्य तक विस्तृत करें जो संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों द्वारा राष्ट्रपति या राज्यपाल को प्रदत्त किए गए हैं तो संसदीय लोकतन्त्र रोगन (प्रलेप) के समान सतही बन जाएगा और राष्ट्रीय निर्वाचन अंकों की व्ययसाध्य और निरर्थक कबायत बन जाएंगे। हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए विवश होंगे कि देश का शासन करने की शक्तियों का प्रयोग करने वाले दो समानान्तर प्राधिकारी हैं जैसा कि द्वैध शासन के दिनों में था। अपवाद केवल यह होगा कि व्हाइट-हाल के स्थान पर राष्ट्रपति भवन और राजभवन स्थापित हो जाएंगे। संघ और राज्य स्तर पर कैबिनेट का असंकुचन (शि्रंक) राजनैतिक और प्रशासनिक प्राधिकरण के तौर पर हो जाएगा और अपनी शक्तियों और जिम्मेदारियों के प्रति संजीदा रहते हुए राज्य का प्रधान हर मेजस्टीज-सेक्रेटरी-ऑफ-स्टेट फार इंडिया का नया रूप बन जाएगा जिसे ब्रिटिश संसद् से भी परेशानी नहीं होती थी—जो अमरीका के राष्ट्रपति से भी शक्ति में थोड़ा अधिक होता था। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार तोड़-मरोड़ कर किए गए निर्वचन से हमारे गणतन्त्र के ढांचे का सार और शक्ति नष्ट हो जाएगी, विशेष रूप से जब हम यह स्मरण करते हैं कि राज्यपाल केवल नियुक्त किए गए कृत्यकारी हैं और स्वयं राष्ट्रपति भी सीमित अप्रत्यक्ष आधार पर निर्वाचित होते हैं। जैसा हमने पहले ही संकेत किया है, इस न्यायालय की नजीरों की एक बहुत बड़ी श्रृंखला द्वारा दशाब्दियों से यह स्थापित किया गया है कि भारत में सरकार का कैबिनेट रूप और संसदीय पद्धति अपनाई गई है और इसके विपरीत विचारधारा निश्चित रूप से हमारी राजनैतिक चेतना, सांविधानिक सिद्धान्त और संस्कृति के विपरीत मान कर रद्द कर दी जानी चाहिए।

---

[1] (1971) 3 एस० सी० आर० 461.

[2] (1954) 5 ए० सी० आर० 294.

151. तथापि अपीलार्थी की दलील **सरदारी लाल** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले के आधार पर दी गई है। उस मामले में इस न्यायालय ने 'संविधान के अनुच्छेद 311(2) के परन्तुक के खण्ड (ग) द्वारा राष्ट्रपति को अभिव्यक्त रूप से प्रदत्त की गई शक्तियों के प्रयोग' पर विचार किया था। उस मामले में यह बात दोनों पक्षों द्वारा मानी गई थी कि अपीलार्थी के मामले पर विचार करने का स्वयं राष्ट्रपति को कोई अवसर नहीं मिला और आदेश भारत सरकार के एक अधीनस्थ अधिकारी द्वारा किया गया था। विवाद इस बाबत था कि क्या राज्य की सुरक्षा के हित में अनुच्छेद 311(2) के परन्तुक के खण्ड (ग) के अधीन जांच करने की आवश्यकता समाप्त करने का कृत्य राष्ट्रपति को व्यक्तिगत रूप से करना चाहिए या यह ऐसा कृत्य हो सकता है जिसका कामकाज के आबंटन के नियमों द्वारा बंटवारा किया जा सके। निस्संदेह अनुच्छेद 311 के सुसंगत पाठ में यह कहा गया है कि राष्ट्रपति का समाधान होना चाहिए और न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जो कुछ आशयित था, वह मन्त्रिमण्डल का समाधान नहीं था किन्तु राष्ट्रपति का समाधान था। सर्वसम्मत न्यायालय की ओर से न्यायाधिपति ग्रोवर ने यह मत व्यक्त किया—

> "इस न्यायालय ने जिन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया है उनके आधार पर अनुच्छेद 311(2) के परन्तुक के खण्ड (ग) में वर्णित कृत्य का प्रत्यायोजन राष्ट्रपति संघ के किसी सिविल सेवक के मामले में किसी अन्य व्यक्ति को नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में इस बारे में उनका व्यक्तिगत समाधान होना चाहिए कि राज्य की सुरक्षा के हित में खण्ड 2 द्वारा विहित जांच का किया जाना समीचीन नहीं है। पहली बात यह है कि आम राय यही रही है कि सम्पृक्त अनुच्छेद द्वारा न्यस्त प्रकृति के कृत्यों का, जिनमें से कुछ का उल्लेख पहले किया जा चुका है, और विशिष्टतः उन अनुच्छेदों के अधीन वाले कृत्यों का, जिनके अधीन कतिपय तथ्यों या परिस्थितियों के विद्यमान् होने के बारे में राष्ट्रपति का व्यक्तिगत समाधान होना आवश्यक है, प्रत्यायोजन राष्ट्रपति किसी भी अन्य व्यक्ति को नहीं कर सकते। दूसरी बात यह है कि परन्तुक के खण्ड (ग) के बारे में जयन्तीलाल अमृतलाल शोधन वाले मामले से ऊपर उद्धृत पैरा में यही मत विनिर्दिष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया है कि उस उपबन्ध के अधीन राष्ट्रपति की शक्तियों का प्रत्यायोजन नहीं हो सकता। तीसरी बात यह है कि परन्तुक के खण्ड (ख) में उल्लिखित प्राधिकारी और भी महत्वपूर्ण है। संविधान निर्माताओं ने, यह स्पष्ट है, यह समझा होगा कि ऐसे मामले पर,

[1] (1971) 3 एस० सी० आर० 461.

जिसमें कि राज्य की सुरक्षा के सम्बन्ध में विचार किया जाना है, राष्ट्रपति को व्यक्तिगत रूप से विचार करना चाहिए और उनका समाधान हो जाना चाहिए कि किसी विशिष्ट सेवक की दशा में अनुच्छेद 311 के खण्ड 2 के अधिष्ठायी भाग के अधीन जांच परन्तुक के खण्ड (ग) में कथित कारणों से समीचीन नहीं है।"

152. **जयन्तीलाल अमृत लाल शोधन बनाम एफ० एन० राणा**[1] वाले मामले में व्यक्त किए गए कतिपय सम्प्रेक्षणों का अवलम्ब लिया गया है जिनके द्वारा स्पष्ट रूप से **सरदारी लाल**[2] वाले मामले के विनिश्चय में समर्थन किया गया है। किन्तु यह याद रखा जाना चाहिए कि उस मामले में असली मामला राष्ट्रपति को राज्य का शासन करने के लिए अनुच्छेद 258 द्वारा प्रदत्त की गई कार्यपालिका शक्तियों के प्रत्यायोजन की सांविधानिकता से सम्बन्धित था। उस मामले में उन कृत्यों का प्रभेद बतलाया गया था जो संघ सरकार में विनिहित किए गए हैं और जो राष्ट्रपति में निहित हैं। न्यायालय ने यह मत अपनाया कि अनुच्छेद 258(1) में राष्ट्रपति को इस बात की इजाजत नहीं दी गई है कि वह, अर्थात् राष्ट्रपति, संविधान के स्पष्ट उपबन्धों द्वारा उसे विनिहित शक्तियों और कृत्यों को त्याग दे (दूसरे को प्रत्यायोजित कर दे)। **सरदारी लाल**[2] वाले मामले में अवलम्ब लिए गए विशिष्ट मत यहां उद्धृत किए जाते हैं—

"अनुच्छेद 123 के अधीन अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति; आपात के दौरान अनुच्छेद 268 से अनुच्छेद 279 तक के उपबन्धों का निलम्बन; अनुच्छेद 356 के अधीन राज्यों में सांविधानिक तन्त्र की विफलता की घोषणा; अनुच्छेद 360 के अधीन वित्तीय आपात घोषित करना, अनुच्छेद 309 के अधीन ऐसे व्यक्तियों की भर्ती एवं सेवा की शर्तों के बारे में नियम बनाना, जिन्हें संघ के कार्यकलापों के सम्बन्ध में पदों और सेवाओं में नियुक्त किया जाए; आदि अनेक शक्तियों में से कुछ ऐसी शक्तियां हैं जो संघ सरकार की शक्तियां नहीं हैं, ये शक्तियां राष्ट्रपति में संविधान द्वारा निहित हैं और इन शक्तियों का प्रत्यायोजन या न्यास किसी अन्य निकाय या प्राधिकारी को अनुच्छेद 258(1) के अधीन नहीं किया जा सकता। यह दलील स्पष्टतः एक भ्रान्ति पर आधारित है कि चूंकि इन शक्तियों की प्रकृति ही ऐसी है कि यह आशय नहीं हो सकता कि इन शक्तियों को राज्य को अथवा राज्य के अधिकारियों को अनुच्छेद 258(1) के अधीन न्यस्त कर दिया जाए, अतः उस खण्ड

---
1 (1964) 5 एस० सी० आर० 294.
2 (1971) 3 एस० सी० आर० 461.

1974(8) eILR(PAT) SC 1

को सीमित रखा जाए। उन शक्तियों का प्रत्यायोजन अनुच्छेद 258(1) के अधीन नहीं किया जा सकता क्योंकि वे संघ की शक्तियां नहीं हैं, न कि इसलिए (नहीं किया जा सकता) कि उन शक्तियों की प्रकृति विशिष्ट प्रकार की है। राष्ट्रपति द्वारा प्रयोक्तव्य बहुत सी अन्य शक्तियां भी हैं। उनमें से कुछ ये हैं : न्यायाधीशों की नियुक्ति (अनुच्छेद 134 और 217), राजभाषा-समितियों की नियुक्ति (अनुच्छेद 344), पिछड़े वर्गों की परिस्थितियों में अन्वेषण करने के लिए आयोगों की नियुक्ति (अनुच्छेद 340), अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति (अनुच्छेद 338), नियोजन पर्यवसित करने के लिए उनके प्रसाद का प्रयोग (अनुच्छेद 310), इस बात की घोषणा करना कि राज्य की सुरक्षा के हित में पदच्युत किए जाने वाले लोक सेवक को अनुच्छेद 311(2) द्वारा अनुध्यात अवसर देना समीचीन नहीं है [अनुच्छेद 311(2)] : ये राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्तियां हैं और इन शक्तियों को किसी निकाय या अधिकारी को प्रत्यायोजित या न्यस्त नहीं किया जा सकता क्योंकि वे अनुच्छेद 258 के अन्तर्गत नहीं आतीं।"

153. उक्त मामले में न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न नहीं था कि क्या राष्ट्रपति को इन कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से करना चाहिए या उनका प्रयोग मन्त्री द्वारा या उस निमित्त कामकाज के नियमों के अधीन किए गए आबंटन के अनुसार किसी अधिकारी द्वारा प्रयोग किया जा सकता है।

154. राष्ट्रपति की आत्यन्तिक शक्ति के सिद्धांत को पूर्ण रूप से निकाल फेंकने (समाप्त करने) के पहले हमें संविधान के दो अन्य अनुच्छेदों पर विचार करना चाहिए। उनमें से एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के अवधारण से सम्बन्धित है [अनुच्छेद 217(3)] और दूसरा निर्वाचन आयोग से सम्बन्धित है (अनुच्छेद 361) जो न्यायिक विचारण हेतु न्यायालय के समक्ष आए थे। अपीलार्थी के काउन्सेल ने इन मामलों के उन अंशों का अवलम्ब लिया है जिनमें राज्य के प्रधान द्वारा व्यक्तिगत रूप से निर्णय करने के सिद्धांत के संबंध में एक तरह से उलटी बात कही गई है।

155. **जे० पी० मित्तर** बनाम **मुख्य न्यायाधिपति, कलकत्ता**[1] वाले मामले में इस न्यायालय को कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश की आयु के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा किए गए विनिश्चय पर विचार करना पड़ा और उस संदर्भ में अनुच्छेद 217(3) के सही विस्तार और प्रभाव को

[1] (1965) 2 एस० सी० आर० 53, 68.

अभिनिश्चित करना पड़ा जिसके द्वारा राष्ट्रपति को किसी न्यायाधीश की आयु का अन्तिम रूप से अवधारण करने की अनन्य अधिकारिता दी गई है। उस मामले में अनुच्छेद 217(3) में विहित रीति के जरिए गृह मन्त्रालय ने पश्चिमी बंगाल के मुख्यमन्त्री को लिखा कि उन्होंने भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श कर लिया है और मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दी गई सलाह से वे सहमत हैं और इसलिए उन्होंने यह विनिश्चय किया है कि अपीलार्थी की जन्म तारीख......है। यह विनिश्चय सम्यक् अनुक्रम में अपीलार्थी को संसूचित किया गया। जब उक्त विनिश्चय पर इस आधार पर आक्षेप किया गया कि वह केवल गृह-मन्त्री द्वारा किया गया है और राष्ट्रपति द्वारा व्यक्तिगत रूप से नहीं किया गया है तब इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

> "आनुकल्पिक रूप से अपीलार्थी ने यह बात कही कि कार्यपालिका उसकी आयु का अवधारण करने के लिए हकदार नहीं थी और यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि यह बात संविधान में अनुच्छेद 217(3) के अन्तः-स्थापित किए जाने के पहले की गई थी। निस्सन्देह अपीलार्थी की यह दलील न्यायसंगत थी कि कार्यपालिका उसकी आयु के प्रश्न का अवधारण करने के लिए अक्षम थी क्योंकि वह ऐसी बात है जिस पर मामूली तौर पर सक्षम अधिकारिता वाले उच्च न्यायालयों के समक्ष संस्थित की गई न्यायिक कार्यवाहियों पर विचार किया जाना चाहिए। इस संविवाद के प्रारम्भिक प्रक्रम में अपीलार्थी द्वारा दी गई इस दलील में पर्याप्त बल है कि यदि कार्यपालिका को उच्च न्यायालय के कार्यरत न्यायाधीश की आयु का निर्धारण करने की अनुज्ञा दी जाएगी तो इससे न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर गम्भीर रूप से प्रभाव पड़ेगा।"

इस तर्क के आधार पर न्यायालय ने आदेश अभिखण्डित कर दिया। मामले का विनिश्चयाधार यह निकला कि स्वयं राष्ट्रपति को कार्यपालिका से प्रभावित हुए बिना अर्थात् न्यायपालिका से संबंधित विभाग के भारसाधक मन्त्री से प्रभावित हुए बिना न्यायाधीश की आयु विनिश्चित करनी चाहिए।

156. **भारत संघ** बनाम **ज्योति प्रकाश मित्तर**[1] वाले मामले में यह विनिश्चय दोहराया गया। यद्यपि यह दलील दी गई कि उस मामले में राष्ट्रपति का मार्गदर्शन गृह मन्त्रालय के मन्त्री और प्रधानमन्त्री द्वारा हुआ था किन्तु न्यायालय ने तथ्यों के आधार पर उस दलील को नामंजूर कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि विनिश्चय स्वयं राष्ट्रपति ने किया था न कि प्रधानमन्त्री या गृहमन्त्री ने।

---

[1] (1971) 3 एस० सी० आर० 483; [1971] 1 उम० नि० प० 941.

157. संविधान की स्कीम के प्रकाश में हम ने पहले ही यह निर्देश कर दिया है कि यह बात सन्देहपूर्ण है कि क्या राष्ट्रपति के व्यक्तिगत समाधान की बाबत ऐसा निर्वचन सही है। हमारा मत है कि सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए राष्ट्रपति से यथास्थिति मन्त्री या मन्त्र-परिषद् अभिप्रेत है और जब उसके मन्त्रियों का ऐसा मत, समाधान या विनिश्चय होता है तब सांविधानिक रूप से वह उसका (राष्ट्रपति का) मत, समाधान या विनिश्चय होता है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता जो हमारे संविधान का आधारभूत सिद्धान्त है और जिसका विचलन किए जाने को न्यायसंगत ठहराने के लिए अवलम्ब लिया गया है, सुसंगत अनुच्छेद द्वारा संरक्षित है जिसके द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श बाध्यकर बनाया गया है। सभी सम्भाव्य मामलों में भारत सरकार द्वारा भारतीय न्यायपालिका के उच्चतम पदाधिकारी का परामर्श स्वीकार किया जाएगा और स्वीकार किया जाना चाहिए और न्यायालय को इस बात की परीक्षा करने का अवसर प्राप्त होगा कि यदि मन्त्री भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दिए गए परामर्श के अनुसार कार्य नहीं करते हैं तो क्या मन्त्री के अभिमत में कोई अन्य असंगत परिस्थिति समाविष्ट हो गई है। व्यवहार में ऐसे नाजुक विषय के सम्बन्ध में अन्तिम राय भारत के मुख्य न्यायाधिपति की होनी चाहिए और उनके परामर्श को न मानने के सम्बन्ध में मामूली तौर पर यह माना जाएगा कि कोई अनुचित बात विचार में लेकर कार्य किया गया है जिससे आदेश दूषित हो जाएगा। इस दृष्टिकोण से यह बात सारहीन है कि क्या राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री या न्याय-मन्त्री ने औपचारिक रूप से विवाद्यक का विनिश्चय किया है।

158. **वृन्दावन नायिक** बनाम **निर्वाचन आयोग**[1] वाले मामले में राष्ट्रपति (अनुच्छेद 103) और राज्यपाल (अनुच्छेद 192) के कृत्यों से सम्बन्धित एक नाजुक परिस्थिति पर विचार किया गया। न्यायपालिका की स्वतंत्रता के समान हमारे प्रजातंत्र का यह एक पवित्र सिद्धांत है कि विधान-सभाओं के सदस्यों की अनहर्ताओं की बाबत विनिश्चय निष्पक्ष होने चाहिए। औपचारिक तौर पर इस सम्बन्ध में विवाद का विनिश्चय करने की शक्ति क्रमशः अनुच्छेद 103 और अनुच्छेद 192 के अधीन राष्ट्रपति और राज्यपाल में निहित है। यह बात निष्पक्षता का उपहास होगी यदि ऐसा विनिश्चय मन्त्रिमण्डल की सलाह और मन्त्रणा के आधार पर किया जाए जो आवश्यक रूप से किसी दल या दलों के समूह में से चुना जाता है। यह कैसे सम्भव है कि किसी दल के प्रति वफादार राजनीति में सक्रिय कोई व्यक्ति हमारे बहुवादी समाज में ऐसे विषय का निर्णय

---

[1] (1965) 3 एस० सी० आर० 53.

कर सकता है जिससे वह काफी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। अतः संविधान ने ऐसे विवाद में निर्वाचन आयोग को असली निर्णायक बनाया है। ऐसा करने में यह अनुमान किया गया है कि निर्वाचन आयोग स्वतन्त्र और निर्भय है और वह सत्ताधारी दल का अहसानमन्द नहीं है। सांविधानिक उपबंध यह है कि राष्ट्रपति (राज्यपाल) किसी सदस्य की अनर्हता का प्रश्न निर्वाचन आयोग की राय के लिए निर्देशित करेगा और वह 'ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा' जिससे कि यह बात कि क्या विनिश्चय करने का अधिकार औपचारिक रूप से राष्ट्र पति में है या उसका प्रयोग उसके मन्त्रियों की सलाह और मन्त्रणा से किया जाना चाहिए, सारहीन है क्योंकि वास्तविक न्यायनिर्णयन हमेशा निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाएगा जिससे सरकार और राष्ट्रपति आबद्ध हैं और राष्ट्रपति ऐसे विनिश्चय के सम्बन्ध में आदेश पर अपने हस्ताक्षर मात्र ही करता है। इस दृष्टिकोण से **बृन्दावन**[1] वाले मामले में एक विशेष परिस्थिति पर विचार किया गया है और वह इस सर्वव्यापक नियम को अन्यथा प्रभावित नहीं करता है कि राज्य का प्रधान अपने मन्त्रियों की सलाह और मन्त्रणा के अनुसार ही कार्य करने के लिए आबद्ध है। मुख्य न्यायाधिपति गजेन्द्रगडकर ने विधानमण्डल के सदस्यों की अनर्हता की बाबत विनिश्चय से सम्बन्धित स्कीम पृष्ठ 60 पर इस प्रकार वर्णित की है—

> "इस उपबन्ध का उद्देश्य (अनुच्छेद 192) स्पष्ट रूप से निर्वाचन आयोग को इस बात का विनिश्चय करना है यद्यपि इस प्रकार विनिश्चय मामूली तौर पर राज्यपाल के नाम से घोषित किया जाएगा। जब अनुच्छेद 192(1) के अधीन राज्यपाल अपना विनिश्चय सुनाता है तो उसे अपनी मन्त्रि-परिषद् से परामर्श करना अपेक्षित नहीं है। उसके लिए उस मामले पर विचार करना और विनिश्चय करना भी अपेक्षित नहीं है। उसे केवल निर्वाचन आयोग की राय के लिए उस प्रश्न को भेजना होता है और जैसे ही वह राय प्राप्त हो जाती है, 'वह उस राय के अनुसार कार्य करेगा।' विधानसभा के सदस्यों के निर्वाचन के विरुद्ध की गई शिकायतों का विनिश्चय करने की अधिकारिता अधिनियम के सुसंगत उपबन्धों के अधीन निर्वाचन अधिकरण को है। इसका अर्थ है कि किसी भी सदस्य के निर्वाचन की विधिमान्यता पर आक्षेप किए जाने वाले अभिकथनों का निर्वाचन आयोग द्वारा गठित निर्वाचन अधिकरणों द्वारा विचारण किया जाएगा। इसी प्रकार बाद में सदस्यों द्वारा जो विधिमान्य रूप से निर्वाचित किए गए हैं, उपगत की गई अनर्हताओं से सम्बन्धित सभी शिकायतों पर सारतः निर्वाचन आयोग द्वारा

---

1 (1965) 3 एस० सी० आर० 53.

विचार किया जाएगा यद्यपि औपचारिक रूप से विनिश्चय राज्यपाल द्वारा सुनाया जाएगा।"

इन सब बातों से ऐसा सम्प्रभु (सावरेन) बनता है जो विधानमण्डल को असमर्थ बना सकता है, न्यायपालिका को कमजोर कर सकता है और कैबिनेट को उलट सकता है। राज्य स्तर पर ऐसे ही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए राज्यपाल से सम्बन्धित ऐसी ही शक्तियों पर दृष्टि डालनी होगी। राज्यपाल की दशा में एक अतिरिक्त तथ्य यह है कि उसे अभिव्यक्त रूप से वैवेकिक शक्ति सम्बन्धी शक्ति का कुछ क्षेत्र दिया गया है। बहुत गम्भीर बात यह है कि न्यायालय को इस बात की जांच करने की अधिकारिता नहीं है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल को मन्त्रियों द्वारा क्या सलाह दी गई है और इस प्रकार शक्ति के प्रयोग पर प्रभावशील न्यायिक नियन्त्रण भी निस्तेज हो गया है। यदि हम इन शक्तियों को राज्य के प्रधान की 'व्यक्तिगत शक्ति, के तौर पर शब्दशः पढ़ते हैं तो इसका परिणाम काफी परेशानी पैदा करने वाला होता है क्योंकि हमारे देश में काफी लम्बे समय तक साम्राज्यवादी अन्धकार की लम्बी रात्रि रही है और हमारा देश राजशाही परम्परा के अध्यधीन रहा है। डाक्टर अम्बेडकर ने संविधान-सभा में यह चेतावनी इन निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त की थी, जो आज भी सुसंगत है—

"यह चेतावनी किसी अन्य देश की तुलना में भारत के संदर्भ में और भी जरूरी है क्योंकि भारत में भक्ति या जिसे भक्ति का पथ या व्यक्ति-पूजा कहा जा सकता है, राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण भाग लेती है जिसकी व्यापकता संसार के किसी अन्य देश की राजनीति में भक्ति द्वारा भाग लेने की व्यापकता से बहुत ही अधिक है। धर्म में भक्ति आत्मा की मुक्ति का मार्ग हो सकती है किन्तु राजनीति में भक्ति या व्यक्ति-पूजा निस्सन्देह पतनकारी है और अन्ततः तानाशाही का निश्चित रास्ता है[1]।"

159. राष्ट्रपति की तथा राज्य स्तर पर राज्यपाल की सर्वशक्ति हमारी मूल विधि के पृष्ठों में बड़े शिष्ट रूप से समाहित की गई है जिसका स्पष्ट रूप से आशय यह है कि जहां अनुच्छेदों में अभिव्यक्त रूप से शक्ति या कृत्यों के प्रदत्त किए जाने का उल्लेख है, ऐसा कामकाज निश्चित रूप से मन्त्रिमण्डल द्वारा निपटाया जाना चाहिए जो विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी है और उसके माध्यम से परार्थ रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी है। इस प्रकार हमारे लोकतन्त्र को एक व्यक्ति मात्र को अभ्यर्पित करने की बजाय जिसकी ईश्वर

[1] कांस्टिट्यूनल गवर्नमेंट इन इण्डिया—बाई० एम० वी० पायली, पृष्ठ 770—1965 संस्करण—एशिया पब्लिशिंग हाउस.

के समान सर्वव्यापक और सर्वशक्तिशाली स्थिति है, जो हमारी राजनीतिक पद्धति के आधारभूत तत्वों से मेल नहीं खाती, प्रतिसंवर्धन होता है—अन्यथा राष्ट्रीय निर्वाचन मृत सागर के फल न बन जाएं, विधायी अंग ध्वनि और क्रोध से पूर्ण न बन जायें जिनसे कुछ भी संज्ञापित न हो और मन्त्रि-परिषद् लोक-सभा के प्रति उत्तरदायित्व की बाबत परेशानी की स्थिति में न पड़ जाए और वह राज्य के प्रधान के वैयक्तिक विनिश्चय के अधीन न हो जाए। हमारे देश के समान संसदीय ढंग के गणराज्य में इस प्रक्रिया द्वारा स्वयं गणराज्य के समापन की ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती है। उसके विपरीत जनता के अधिकारों को मजबूत करने की लोकतान्त्रिक पूंजी-निर्माण की प्राप्ति कैबिनेट-सदन-निर्वाचन के तन्त्रों को शक्तिशाली बना कर ही हो सकती है।

160. यह निश्चित है कि राष्ट्रपति और राज्यपाल से सम्बन्धित अनुच्छेदों के व्याप्तिक्षेत्र से सम्बन्धित व्यापक अर्थ वाले मुख्य शब्द 'कृत्यों' (अनुच्छेद 74 और 163) और 'कारबार' और विभागों का बंटवारा, कामकाज के नियम और अधीनस्थ पदधारियों को प्रत्यायोजन आदि हैं जो कैबिनेट पद्धति के कार्य करने की रीति भी बतलाते हैं। विभिन्न उपबन्धों के शब्दों से सम्बन्धित बारीकियों पर लम्बी बहस जो संसदीय परिप्रेक्ष्य के अत्यावश्यक तत्वों से विच्छिन्न हो, हमें घोर सांविधानिक चूक करने का दोषी बनाएगी। इसी प्रकार का समाधान हो गया है, 'राय', 'जैसा वह उचित समझे', 'यदि यह प्रतीत हो', आदि शब्दों का, राज्य के प्रधान पर मन्त्रिमण्डल की अदृश्य किन्तु बहुत वास्तविक मौजूदगी को विशेष रूप से ध्यान में रख कर, निर्वचन करना होगा।

161. मामले के इस पहलू पर विचार करना समाप्त करने के पहले हम यह स्मरण करते हैं कि जब तक यह संविधान कारगर बना रहेगा—कोई भी नहीं कह सकता कि ऐसा कब तक होता रहेगा, प्रत्येक पीढ़ी चूंकि अधिकांशतः एक नया राष्ट्र होती है, अतः यह न्यायालय उसके साथ अस्तित्व में रहता है और अन्य बातों के साथ-साथ उप-प्रभुसत्ताओं और नागरिकों के बीच कानूनी कार्यवाहियों, नाजुक और खतरनाक संविवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से विनिश्चित करता है। अनुच्छेद 141 के अधीन इस शीर्षस्थ अधिकरण के निर्णय विधि होते हैं जो तब तक आबद्धकर होते हैं जब तक कि उनका पृथक और सक्षम रूप से फिर से निर्वचन न कर दिया जाए। किन्तु न्यायाधीशों के तौर पर हमें यूनाइटेड स्टेट्स की सुप्रीम कोर्ट के इतिहासकार श्री चार्ल्स वारेन[1] के शब्दों को स्मरण रखना चाहिए—

---

1 दि सुप्रीम कोर्ट इन यूनाइटेड स्टेट्स हिस्ट्री, III पृष्ठ 470-471 (1922).

"तथापि न्यायालय संविधान के उपबन्धों का निर्वचन करता है, ऐसा निर्वचन संविधान ही होता है जो विधि है न कि न्यायालय का विनिश्चय ।"

और न ही **सरदारी लाल**[1] वाला मामला इतना प्राचीन और महत्त्वपूर्ण है कि उसको उलटने से निर्णीतानुसरण की पवित्रता अस्त-व्यस्त हो जाएगी। कुछ विनिर्णय भले ही वे सर्वोच्च न्यायालय के हों, जब निर्णयज-विधि और सांविधानिक विचार की स्पष्ट धारा के प्रवाह के विरुद्ध होते हैं तो वे जैसा कि जस्टिस राबर्ट्स ने स्मिथ बनाम आलराइट (321 यू० एस० 649, 662) वाले मामले में कहा है—"वे रेल मार्ग टिकट के ऐसे वर्ग तक सीमित हो जाते हैं, जो उसी दिन और उसी गाड़ी के लिए वैध होता है।"

162. हम हमारे संविधान की इस शाखा के सम्बन्ध में यह विधि घोषित करते हैं कि राष्ट्रपति और राज्यपाल विभिन्न अनुच्छेदों के अधीन समस्त कार्यपालिका और अन्य शक्ति के अभिरक्षक हैं और वे इन उपबन्धों के आधार पर अपनी प्ररूपिक सांविधानिक शक्तियों का प्रयोग सिवाय कुछ सुज्ञात आपवादिक परिस्थितियों के अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा पर और उसके अनुसार ही करते हैं। दुराग्राही हुए बिना या बहुत अधिक विस्तार में जाए बिना ये परिस्थितियां इस प्रकार हैं—(क) प्रधान मन्त्री (मुख्य मन्त्री) को चुनना यद्यपि इस प्रकार चुनना इस सर्वोपरि बात द्वारा निर्बंधित है कि उसे सदन में बहुमत का समर्थन मिलना चाहिए; (ख) ऐसी सरकार को पदच्युत करना जिसका सदन में बहुमत न रहा हो किन्तु जो पद छोड़ने से इन्कार करे; (ग) सदन का विघटन जहां देश को अपील रिकासिटस है यद्यपि इस क्षेत्र में राज्य के प्रधान को राजनीति में फंसने से बचना चाहिए और उसे प्रधान मन्त्री (मुख्य मन्त्री) की मन्त्रणा प्राप्त होनी ही चाहिए जो अन्ततः इस कदम के लिए जिम्मेदारी ले। हम इन अजीब परिस्थितियों में सांविधानिक औचित्य की बाबत विस्तार में परीक्षा नहीं कर रहे हैं। हम केवल यह चेतावनी दे रहे हैं कि इस क्षेत्र में भी कार्यवाही प्रजातन्त्र को खतरा होने के कारण ही की जानी चाहिए और सदन या देश को अपील किया जाना स्पष्ट रूप से बाध्यकर हो जाना चाहिए। हमें कोई संदेह नहीं है कि **डी स्मिथ का शाही अनुमति**[1] के सम्बन्ध में कथन भारत में राष्ट्रपति और राज्यपाल पर भी समान रूप से लागू होता है—

"शाही अनुमति की इस आधार पर इन्कारी कि राजा किसी विधेयक को दृढ़ता से अननुमोदित करता है या वह बहुत अधिक

1 (1971) 3 ए०० सी० आर० 461.

2 कान्स्टिट्यूशनल एण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव ला—बाई० एस० ए० डी/स्मिथ—पेनग्युन बुक्स आन फाउन्डेशन्स आफ ला.

संविवादत्मक है, सांविधानिक होगा। एकमात्र परिस्थिति जिसमें शाही अनुमति रोका जाना न्यायसंगत हो सकता है, वह होगी जब सरकार स्वयं ही ऐसा करने की सलाह दे—यह एक बहुत अधिक अनधिसम्भाव्य परिस्थिति है या सम्भवत: यदि यह पाया जाए कि कोई विधेयक प्रक्रिया सम्बन्धी आज्ञापक अपेक्षाओं की उपेक्षा करके पारित किया गया था। किन्तु चूंकि पश्चात्‌वर्ती स्थिति में सरकार की यह राय होगी कि जब एक बार किसी अध्युपाय को अनुमति मिल गई है तो उससे अनुमति दिया जाना ज्ञात होगा और विचलन से अध्युपाय की विधिमान्यता प्रभावित नहीं होगी।"

163. जहां तक हमारे समक्ष की अपीलों के प्रभाव का सम्बन्ध है, वह यह है कि आक्षेपित आदेशों में इस आधार पर कोई खामी नहीं है कि राज्यपाल ने स्वयं कागजपत्रों का परिशीलन नहीं किया है या आदेश नहीं किए हैं।

164. इस विवाद्यक का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व, जैसा पहले बताया गया है, भयमुक्त न्याय है जो हमारी मूल दस्तावेज का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। लार्ड कोक के समय से इंग्लैण्ड में न्यायपालिका, कार्यपालिका के नियन्त्रण से मुक्त है। हमारे संविधान-निर्माता भी इस उदाहरण से प्रभाबित हुए थे और उन्होंने न्यायपालिका पृथक् करने के लिए संविधान में उपबन्ध सन्निहित करके विधि के शासन की गरिमा को दृढ़ आधार दिया है। न्याय ऋजु और स्वतन्त्र तब बन जाता है जब संस्थागत उन्मुक्ति और स्वायत्तता की गारण्टी होती है, निस्सन्देह न्यायिक स्वाधीनता के अन्य भेद हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु प्रस्तुत विचार-विमर्श के लिए वे असंगत हैं। अधीनस्थ न्यायपालिका अर्थात् न्याय ही पहली श्रेणी पर कार्यपालिका द्वारा हस्तक्षेप का अपवर्जन किया जाना चिढ़ाने वाला साबित हो सकता है, यदि उस पर नियन्त्रण दो स्वमियों अर्थात् उच्च न्यायालय और सरकार का रहता है, जिनमें से पश्चात्‌वर्ती की स्थिति अन्यथा अच्छी मजबूत होती है। कभी-कभी स्थानान्तरण दण्ड से अधिक नुकसानदायक हो सकता है और उच्च न्यायालय द्वारा अनुशासनात्मक नियन्त्रण उच्च न्यायालय के प्रशासकीय आदेशों पर सरकार में अपील अधिकारिता के निहित किए जाने से भी प्रभावहीन हो सकता है। हमारे संविधान के निर्माता इस सांविधानिक परिप्रेक्ष्य से अनुप्राणित थे जब उन्होंने अनुच्छेद 233 से 237 अधिनियमित किए। उच्च न्यायलय की अपने अधीनस्थ भागों पर प्रशासनिक अधिकारिता की बाबत कोई निर्वचन इस विचार से प्रेरित होना चाहिए कि न्यायपालिका से कार्यपालिका का पृथक्करण हमारे संविधान का मूलभूत सिद्धान्त है। तथापि हम इस प्रश्न पर आगे विचार नहीं करते हैं क्योंकि प्रस्तुत मामले में सरकार उच्च न्यायालय की सिफारिश से सहमत हो गई थी और उसने उसके अनुसार कार्य किया था। तथापि जब उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण

1974(8) eILR(PAT) SC 1

कार्यपालिका को अरुचिकर लगे तब परस्पर-विरोध को सुलझाने की पद्धति पर विचार लम्बित अपीलों के दूसरे वर्ग पर विचार करते समय किया जाएगा जो इस प्रश्न से प्रत्यक्षत: सम्बन्धित है।

165. तथापि हम इस मामले के एक पहलू के प्रति निर्देश करेंगे। कागज़ पर यह बात बहुत सुन्दर प्रतीत होती है कि उच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायपालिका पर अनुशासनात्मक प्राधिकार विनिहित किया जाए। किन्तु जब निचली न्यायपालिका के सदस्यों के विरुद्ध भ्रष्ट आचरण या अक्षमता के आरोप या लांछन लगाए जाते हैं और वे उच्च न्यायालय की जानकारी में लाए जाते हैं तब उन्हें प्रवर्तन करने में एक कठिनाई है। अभिकथनों की सत्यता की बाबत अन्वेषण कौन करे ? क्या उच्च न्यायालय के पास अनन्य रूप से ऐसा कोई तन्त्र है जो ऐसी शिकायतों की सत्यता की प्रथमदृष्टया जांच करे। एक वरिष्ठ न्यायाधीश के लिए जो प्ररूपिक प्रक्रिया और साक्ष्य का निर्धारण करने में प्रशिक्षित है और जो साक्ष्य इकट्ठा करने में प्रशिक्षित नहीं है, गुप्त रूप से, अनौपचारिक रूप से और विस्तृत और तकनीकी स्वरूप के अन्वेषण के कार्य को करना परेशानीपूर्ण हैं और ऐसा करना अप्रभावशील है क्योंकि अन्वेषण में एक दूसरे प्रकार की दक्षता की आवश्यकता होती है। यदि पुलिस को परिवादों की जांच करने की अनुमति दी जाती है तो न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर सफलतापूर्वक आक्रमण अनिवार्य हो जाएगा। कोई भी मजिस्ट्रेट भयमुक्त हो कर अपना कृत्य नहीं कर सकता यदि अभियोजन विभाग उसके विरुद्ध भी अन्वेषण कर सके। यह बात सचमुच दुखद है कि विवाद्यक के इस नाजुक पहलू की पंजाब उच्च न्यायालय ने उपेक्षा कर दी जब उसने सरकार से यह प्रार्थना की कि वह न्यायपालिका के एक सदस्य के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने के लिए सतर्कता आयुक्त को निदेश दे। न्यायिक स्वतन्त्रता का असली आशय न्यायिक कार्मिकों के अपराधों का अन्वेषण करने से इन्कार करने से पूरा नहीं होता है और न न्यायाधीश द्वारा खुली जांच करने से पूरा होता है जो साक्ष्य इकट्ठा करने का एक कमज़ोर तरीका है। किन्तु परिसूचना संगृहीत करने के लिए किसी साधित्र को सृष्ट करके और साक्ष्य पेश करके ऐसा किया जाना चाहिए। ऐसा तंत्र उच्च न्यायालय के पूर्ण नियन्त्रण में होना चाहिए। यह कोई नया विचार नहीं है। किन्तु यह 1950 में अखिल भारतीय विधि मन्त्रियों के सम्मेलन में उठाया गया था। किन्तु कम-से-कम अब इतना समय बीत जाने के पश्चात् इस अनुभव किए गए दोष का परिहार किया जाना चाहिए।

166. दोनों पक्षों द्वारा विस्तार से दी गई तीसरी दलील अनुच्छेद 309 के अधीन विरचित नियमों की पृष्ठभूमि में अनुच्छेद 311 के विस्तार और व्याप्ति-

क्षेत्र पर अनुच्छेद 310 में अभिव्यक्त 'प्रसाद' के सिद्धांत (प्लेजर डक्ट्रिना) पर अवलम्बित है। दोनों परिवीक्षाधीन व्यक्तियों ने जो अपीलार्थी हैं, यह दलील दी है कि उनकी परिवीक्षा समाप्त करने का जो सीधा सा ढंग है, वह अनुपयुक्तता पर आधारित है। वह वास्तव में और सारत:दण्ड के तौर पर है और वह अनुच्छेद 311(2)में विहित कठिन मानदण्डों से कम है और वे आदेश अवैध हैं। उनकी शिकायत यह है कि आक्षेपित आदेशों के द्वारा उन्हें दाण्डिक परिणाम भोगना पड़ा है और चूंकि एक परिवीक्षाधीन व्यक्ति भी अनुच्छेद 311(2) द्वारा संरक्षित है, ऐसी स्थिति में न्यायालय को उन आदेशों को शून्य अभिनिर्धारित करना चाहिए। स्वाभाविकत: बहस करने का मुख्य आधार **ढींगरा**[1] वाला मामला है। एक अर्थ में ढींगरा वाला मामला भारतीय सिविल सेवक के लिए महान्-अधिकार-पत्र है यद्यपि उससे विभिन्न न्यायिक प्रवृत्तियां पैदा हुई हैं जिन्हें नए नियुक्त परिवीक्षाधीन व्यक्तियों के और अस्थायी कर्मचारियों की सेवाओं के समाप्त करने पर लागू करने के लिए एक साधारण और व्यवहारिक सूत्र के तौर पर लागू किया जा सके। न्यायिक खोज का मुख्य केन्द्र सरकार द्वारा पारित आदेश में दण्ड के तथ्य का पता लगाना रहा है। यदि कार्यवाहियां अनुशासनात्मक हैं तो ढींगरा के मामले का नियम लागू होता है। किन्तु यदि सेवा समाप्ति निर्दोष है और परिवीक्षाधीन व्यक्ति या अस्थायी सेवक पर कोई धब्बा नहीं लगता है, तो अनुच्छेद 311 की सांविधानिक ढाल उपलभ्य नहीं है। मामलों की श्रृंखला में न्यायालय ने इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए एक सिद्धांत या नियम बनाया है जहां अनुपयुक्तता के कारण परिवीक्षा समाप्त करने का आदेश दण्ड स्वरूप नहीं है और अपराध के लिए ऐसा आदेश दण्ड स्वरूप कब हो जाता है। **गोपी किशोर**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह विनिर्णय दिया कि जहां राज्य किसी परिवीक्षाधीन या अस्थायी सेवक के विरुद्ध अवचार के परिवादों के आधार पर यह अभिनिर्धारित करता है तो अनुमान किया जाना चाहिए कि नियोजक ने सेवा समाप्त करने के अपने सीधे-सादे अधिकार का त्याग कर दिया है और अनुच्छेद 311 के अधीन संरक्षित अनुशासनात्मक कार्यवाहियां आरंम्भ कर दी हैं। पूरे तौर पर देखने पर विशेष बात अवचार के परिवादों में जांच करना प्रतीत होगी। मुख्य न्यायाधिपति सिन्हा ने यह मत व्यक्त किया है—

> "यह सच है कि यदि सरकार इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि प्रत्यर्थी राज्य की लोक-सेवा में पद धारण करने के लिए योग्य और उचित व्यक्ति नहीं है तो वह उसे उसके अभिकथित अवचार की बाबत जांच किए बिना

---

1 ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 36.

2 ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 689.

1974(8) eILR(PAT) SC 1

उसकी सेवा समाप्त कर सकती है..........यह सरल तरीका अपनाने की बजाय सरकार ने उसके विरुद्ध कार्यवाही प्रारम्भ करने का और उसे बेईमान और अक्षम व्यक्ति साबित करने का कठिन तरीका अपनाया। उन परिस्थितियों में उसे संविधान के अनुच्छेद 311(2) के संरक्षण पर जोर देने का अधिकार था।"

विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने विधिक स्थिति संक्षेप में इस प्रकार वर्णित की है—

"1. परिवीक्षा पर किसी पद पर नियुक्ति से इस प्रकार नियुक्त किए गए व्यक्ति को उस पद पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है और किसी लोक सेवक को पदच्युत करने के लिए या सेवा से हटाने के लिए सुसंगत नियमों में अधिकथित कार्यवाही किए बिना उसकी सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं।

2. किसी व्यक्ति के नियोजन की जो परिवीक्षा पर पद धारण कर रहा हो, बिना किसी जांच के चाहे वह किसी भी प्रकार की हो, समाप्ति की बाबत यह नहीं कहा जा सकता कि इससे वह किसी पद पर अधिकार से वंचित होता है और इसलिए यह दण्ड नहीं है।

3. किन्तु यदि किसी जांच के बिना ऐसे व्यक्ति की सेवा समाप्त करने की बजाय नियोजक उसके अभिकथित आचरण की बाबत या अदक्षता की बाबत या ऐसे ही किसी कारण के लिए जांच करना पसंद करता है तो सेवा समाप्ति दण्ड के तौर पर होगी क्योंकि इससे उसकी क्षमता पर लांछन लगता है और उसके भविष्य के कैरियर पर प्रभाव पड़ता है। ऐसे मामले में वह संविधान के अच्छेद 311(2) के संरक्षण के लिए हकदार है।

4..

5. किन्तु यदि नियोजक सीधे-सादे ढंग से बिना जांच किए और सेवा से हटाए जाने के लिए हेतुक दर्शित करने की सूचना का अवसर दिए बिना किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवा समाप्त करता है तो परिवीक्षाधीन सिविल सेवक के पास कार्यवाही करने का कोई हेतुक नहीं हो सकता भले ही सेवा से हटाने के पीछे असली हेतुक यह रहा हो कि उसके नियोजक ने उसे उस पद के लिए जिसे वह अस्थायी रूप से धारण किए हुए था, उसके अवचार या अक्षमता या ऐसे ही किसी कारण से उस पद के लिए अनुपयुक्त समझा हो।"

167. 5वीं प्रस्थापना में यह वर्णित किया गया है कि सेवा से हटाए जाने के पीछे असली हेतु विसंगत है और ऐसी जांच किए जाने से जिसके कि परिणामस्वरूप अमिट धब्बा लगता हो, अनुच्छेद 311(2) आकृष्ट होता है। **रामनारायण दास**[1] वाले मामले में ऐसे प्रश्न पर विचार किया गया जहां अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन नियमों द्वारा परिवीक्षा समाप्त करने के लिए किसी प्रकार की जांच करने का उपबंध किया गया है। ऐसी स्थिति में जांच करने की कसौटी आवश्यक रूप से समाप्त हो जाएगी और इसलिए न्यायालय को एक प्रथक कसौटी की परिकल्पना करनी पड़ी। न्या० शाह ने, जैसे कि वे तब थे, वह नियम इस प्रकार वर्णित किया है—

> "प्रत्यर्थी के विरुद्ध जांच यह सुनिश्चित करने के लिए थी कि क्या वह पुष्ट किए जाने के लिए योग्य था। गोपी किशोर के मामले में तृतीय प्रस्थापना अवचार या अदक्षता के अभिकथनों की बाबत किसी जांच के प्रति इस दृष्टि से निर्देश करती है कि यदि वे साबित पाए जाते हैं तो दण्ड अधिरोपित किया जा सकता है न कि ऐसी जांच के प्रति कि क्या कोई परिवीक्षाधीन व्यक्ति पुष्ट किया जाना चाहिए। अतः जांच करने का उद्देश्य इस प्रश्न के लिए विनिश्चायक नहीं है। पुरुषोत्तम लाल ढींगरा वाले मामले में अधिकथित कसौटियों के प्रकाश में जो विनिश्चायक है, वह यह है कि क्या आदेश दण्ड के तौर पर है।"

इस प्रकार जांच के तथ्य से जांच के उद्देश्य की ओर स्थिति परिवर्तित हुई है। **मदनगोपाल**[2] वाले मामले में न्यायालय ने सेवा समाप्ति के सीधे-सादे आदेश पर जांच के उद्देश्य का सिद्धान्त लागू किया। उस मामले में सेवा समाप्ति के लिए हेतुक दर्शित करने की सूचना दी गई थी और जांच की गई थी। यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि जांच हानि या नुकसान पहुंचाने वाली कार्यवाही करने के लिए आशयित थी तो आदेश की निर्दोष शब्दावली से कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। इसके पश्चात् **जगदीश मित्तर बनाम भारत संघ**[3] वाला मामला न्यायालय के समक्ष आया जिसमें न्या० गजेन्द्रगडकर (जैसा कि वे तब थे) ने यह अभिनिर्धारित किया—

> "निस्संदेह आदेश सेवोन्मोचन का आदेश प्रतीत होता है और इस प्रकार वह एक मास की सूचना देकर अस्थायी नियुक्ति समाप्त करने की प्राधिकारी की शक्ति के प्रति निर्देश करता है। किन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जब आदेश में इस तथ्य के प्रति निर्देश होता है कि अपीलार्थी

---

1 ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 161.

2 ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 449.

3 ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 531.

1974(8) eILR(PAT) SC 1

को सेवा में रखे जाने के लिए अवांछनीय पाया गया तो उससे अपीलार्थी पर अभिव्यक्त रूप से लांछन लगता है और उस अर्थ में वह पदच्युति का आदेश अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए न कि मात्र सेवोन्मोचन का आदेश ।"

168. इस प्रकार हम यह देखते हैं कि केवल अनुपयुक्तता अभिनिश्चित करने के लिए की गई जांच और अपराध करने वाले व्यक्ति को दण्डित करने के लिए की गई जांच के बीच बहुत बारीक अन्तर किया गया था जो बहुत अव्यावहारिक और अनिश्चित है विशेष रूप से जब हम यह स्मरण करते हैं कि इस नाजुक कसौटी को लागू करने का माध्यम (तन्त्र) प्रशासक है जो विधिक दृष्टि से अप्रशिक्षित है । "व्यथित" व्यक्ति पर प्रभाव चाहे वह परिवीक्षा समाप्त करने से हो या सेवा से हटाए जाने से हो हमेशा एक सा ही होता है । जांच की कसौटी के उद्देश्य की विसंगति के प्रति निर्देश करते हुए डाक्टर पी० के० त्रिपाठी[1] ने यह बतलाया है—

"'जांच का उद्देश्य' नियम से यह ऋजु प्रक्रिया और उसके पीछे न्याय की भावना हतोत्साहित होती है क्योंकि उसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि जांच का उद्देश्य अभिनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए उस आदेश की जिससे जांच आरम्भ होती है, न्यायिक रूप से संवीक्षा की जाएगी ।"

पुनः यह हो सकता है कि यदि आप संक्षिप्ततः किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवा समाप्त कर देते हैं तो आदेश की न्यायिक रूप से संवीक्षा नहीं की जा सकती और वह आदेश उन्मुक्त होता है । यदि आप अन्तःकरण से इस बात का समाधान करने का प्रयत्न करते हैं कि अभिकथनों की बाबत किसी प्रकार की जांच की जाए तो आप कानून की पकड़ में आ जाते हैं, भले ही आदेश कितनी भी निर्दोष भाषा में लिखा गया हो और इस प्रकार से जटिलताओं को पश्चात्-वर्ती मामलों में छोड़ना ही पड़ा । कुछ मामलों में मार्गदर्शन का सिद्धान्त "मामले का सार" और "आदेश का आधार" कहा गया है । "हेतुक", "आधार" में कब अतिचार करता है । "सार" को पकड़ने के लिए हम "प्ररूप" के परदे को कब हटाते हैं । न्यायालय ऐसा कब कहते हैं । ये "फ्रूडियन" पहलू स्पष्ट रूप से दिन-प्रति-दिन के कार्य 'आए दिन के सांसारिक जीवन' में असफल हो जाते हैं और इस संदर्भ में डाक्टर त्रिपाठी द्वारा अभिव्यक्त किए गए संप्रेक्षण बिना बल के नहीं हैं । उन्होंने कहा है—

"जैसा पहले स्पष्ट किया गया है, ऐसी स्थिति में जहां सेवा समाप्त करने का आदेश ऐसा आदेश मात्र होता है और उसमें विभागीय जांच के

1 (24) स्पाटलाइट्स ऑन कान्स्टिट्यूशनल इन्टरप्रिटेशन—1972 एन० एम० त्रिपाठी प्राइवेट लिमिटेड, मुम्बई ।

1974(8) eILR(PAT) SC 1

धब्बा लगाने वाला परिणाम नहीं बतलाया जाता है तो 'बात के सार' की खोज के लिए आदेश हेतु (असली अप्रकट उद्देश्य) के लिए खोज से अप्रभेदनीय होगा।

हेतु [वास्तविक किन्तु अप्रकट उद्देश्य और प्ररूप (दृश्यमान) या अधिकारिक रूप से प्रकट उद्देश्य] के बीच के सम्बन्ध को समझने में असफल होने से प्रस्तुत संदर्भ में शब्दों और मुहावरों की अवास्तविक क्रिया-प्रतिक्रिया हुई है जिसमें 'हेतु', 'सार', 'प्ररूप' या 'प्रत्यक्ष' के समान प्रतीक अलग-अलग शब्दों के साथ मिलकर बने हैं जिनमें तथ्यों की दुनिया को निश्चित स्थितियों या सत्ताओं का ज्ञान नहीं होता है।"

169. न्यायशास्त्र की इस शाखा की आवश्यकता पूर्ण न्याय तक पहुंचने की उतनी नहीं है किन्तु सीधी-सादी कसौटी अभिकथन करना है जिसे प्रशासक और लोक सेवक बिना कठिनाई के समझ सके और उसे लागू कर सके। बहरहाल अनुपयुक्तता और अवचार के बीच बहुत सूक्ष्म अन्तर है और पिछले वर्षों में इस न्यायालय के विनिर्णयों में जिन बातों पर जोर दिया गया है उनमें परिवर्तन हुआ है। विधि या नियम बदले हैं और पूर्वानुमान करना और भी कठिन हो गया है क्योंकि विधिक प्रकाश और छाया की गति चक्कर में डालने वाली (भ्रमात्मक) रही है। विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने अपने निर्णय में इस समस्या पर विचार किया है और वह नियम स्पष्ट किया है जो इस प्रश्न का अवधारण करने में लागू होना चाहिए कि कब किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवा समाप्त किया जाना सीधे-सादे रूप से सेवा की समाप्ति होगी और कब वह दण्ड की कोटि का होने वाला कहा जा सकता है जिससे कि अनुच्छेद 311 का निषेध उस पर लागू हो सके। विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उससे हम सहमत हैं। जहां तक प्रस्तुत मामले का सम्बन्ध है, विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के निर्णय में वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि इस मामले में नियम 7 की अपेक्षाएं भंग हुई हैं और इस आधार पर अपीलार्थियों के विरुद्ध सेवा-समाप्ति के लिए पारित किए गए आदेश अभिखण्डित किए जाने और अपास्त किए जाने योग्य हैं।

170. परिणामस्वरूप हम विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के निष्कर्ष से सहमत हैं और उनके द्वारा प्रस्तावित आदेश से अपनी सम्मति प्रकट करते हैं।

अपील मंजूर की गई।

मिश्र